ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अगस्त २०१८

Date of Printing = 05-08-18
प्रकाशन दिनांक= 05-08-18

वर्ष ४७ : अङ्क १०
दयानन्दाब्द : १९४
विक्रम-संवत् : श्रावण-भाद्रपद २०७५
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११९

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- ❑ माता पिता की नित्य सेवा..... २
- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ अन्धविश्वास और मुक्ति ४
- ❑ शब्द प्रमाण-२ ७
- ❑ इतिहासकार की कलाकारी-२ १०
- ❑ नास्तिकता भी एक...... १४
- ❑ देश मानसिक..... १९
- ❑ मूल से जुड़ो २५

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

माता पिता की नित्य सेवा करना (पितृयज्ञ) सन्तान का धर्म

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून,मो0:-०९४७२९८५१२१)

मनुष्य के जीवन में ईश्वर के बाद माता-पिता का सबसे अधिक महत्व है। इसके बाद जिन लोगों का महत्व है, उनमें हमारे आचार्य, गुरु व उपाध्याय आते हैं, जिनसे हम ज्ञान, विज्ञान व अनेक विद्याओं का अध्ययन करते व सीखते हैं। यदि दुर्भाग्य से कोई मनुष्य अपने माता-पिता आदि देवताओं के सान्निध्य को प्राप्त कर उनकी सेवा आदि नहीं करता, तो उसका जीवन पशुओं से भी निकृष्ट श्रेणी का होता है। **माता-पिता न हों, तो हमें मनुष्य जीवन मिलना ही असम्भव है। माता-पिता हमारे जन्मदाता होने के साथ-साथ हमारे पालनकर्ता भी होते हैं। वह हमारी शिक्षा व ज्ञानसम्बन्धी आवश्यकताओं को अपने पुरुषार्थ से अर्जित धन व्यय कर पूर्ति करते हैं।** यह कार्य माता-पिता के अतिरिक्त समाज में कोई और नहीं करता है। इस प्रकार से माता-पिता से हमें जो लाभ व सुख प्राप्त होता है, उसका ऋण उतारना हमारा कर्तव्य है। यदि हम अपने माता-पिता के प्रति अपना ऋण नहीं उतारेंगे, तो कर्मफल सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर हमसे उसकी पूर्ति इस जन्म वा परवर्ती जन्मों में करेगा, जिसका परिणाम सुख तो होना सम्भव नहीं अवश्य दुःख ही होगा। **संसार का कोई मनुष्य ऐसा नहीं, जो दुःख चाहता हो।** सभी दुःख से बचने के उपाय करते हैं। इसीलिए मनुष्य उच्च शिक्षा प्राप्त करता है, यह आवश्यक भी है। **इसी के साथ उसे योग्य विद्वानों से सम्पर्क कर जीवन में होने वाले सभी दुःखों के कारणों को जानने और उन से बचने व उन्हें दूर करने के उपायों को भी जानना चाहिये।** जीवन में मिलने वाले दुःखों के अनेक कारण होते हैं। उनमें से एक कारण यह भी हो सकता है कि हमने पूर्वजन्म या इस जन्म में अपने माता-पिता के प्रति सद्व्यवहार न किया हो। हो सकता है कि हमारे व्यवहार से उनकी आत्मा व शरीर को दुःख पहुँचा हो, जिसमें यह भी सम्मिलित है कि हमारे होते हुए उन्हें उचित आवास, भोजन, वस्त्र व सुरक्षित जीवन उपलब्ध न हो पाया हो। हमें अपने माता-पिता की आवश्यकताओं का ध्यान तो रखना ही है, इसके साथ हमें अपने आचार्य, गुरुओं व उपाध्यायों की भोजन, वस्त्र व धन आदि से सेवा करने का अवसर गंवाना नहीं है। ऐसा यदि हम करेंगे, तो इन कर्मों को करके हम अनेक दुःखों से बच सकते हैं। **पूर्व जन्मों के फल तो हमें अवश्य ही भोगने होंगे। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है।** हाँ, यह जानकर कि हमें पूर्वजन्मों के कर्मों का फल अवश्य भोगना है, हंस कर भोगें या रो कर भोगें, तो अच्छा है कि हम हंस कर ही उन दुःखों को भोगें। हमें ईश्वर का ध्यान व उपासना सहित सत्यार्थप्रकाश आदि सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हुए अविचलित होते हुए वाचिक, मानसिक व कायिक दुःखों को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये।

हम अपने माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्यों व उनके निर्वाह की चर्चा कर रहे हैं। **माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्यों की सभी प्रकार से पूर्ति का नाम ही पितृयज्ञ है।** मनुष्य को चाहिये कि जहाँ वह नाना प्रकार के मानसिक व्यवहार करता है, वहीं अधिक नहीं तो पाँच-दस मिनट अपने माता-पिता के उपकारों व उनके कष्टों को भी प्रतिदिन अवश्य स्मरण कर लिया करे। ऐसा करने से उसे यह लाभ होगा कि वह उनके प्रति अपने कर्तव्यों से शायद विमुख न हो। वह यदि माता-पिता की अच्छी तरह से सेवा करेगा, तो उसे माता-पिता का आशीर्वाद मिलेगा और साथ ही माता-पिता की सेवा द्वारा वह जो सद्कर्म कर्म कर रहा है, उसका लाभ भी उसे अवश्य ही प्राप्त होगा। हम जब अपने

शेष पृष्ठ २७ पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश १. अग्नि (ईश्वर) - सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ, ज्ञानस्वरूप, सबसे महान, सुखवर्धक अग्निहोत्र आदि का उपदेश करने वालाा है।

२. अग्नि (भौतिक) अग्निहोत्र नामक यज्ञ को प्राप्त कराने वाला, प्रकाश गुण वाला, महान कार्यों का साधक, चलते समय मार्ग का दर्शक है।

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। अग्निः = ईश्वरः भौतिकश्वा देवता।
निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।।
अथाग्निशब्देनोभावार्थावुपदिश्येते।।

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थों का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म् वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि।
अग्ने बृहन्तमध्वरे।। यजु० 2।4।।

पदार्थः **(वीतिहोत्रम्)** वीतयो विज्ञापिता होत्राख्या यज्ञ येनेश्वरेण। यद्वा वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मात्तं परमेश्वरं भौतिकं वा। वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु। इत्यस्य रूपम् **(त्वा)** त्वां तं वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(कवे)** सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ, कविं क्रान्तिदर्शनं भौतिकं वा **(द्युमन्तम्)** द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तम्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। **(सम)** सम्यगर्थे **(इधीमहि)** प्रकाशयेमहि। अत्र बहुलं छन्दसीति श्नमो लुक् **(अग्ने)** ज्ञानस्वरूपेश्वर प्राप्तिहेतुं भौतिकं वा **(बृहन्तम्)** सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं वा **(अध्वरे)** मित्रभावेऽहिंसनीये यज्ञे वा।। अयं मन्त्रः श० ब्रा० १/३/४/६//

सपदार्थान्वयः हे कवे! सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ! अग्ने! (जगदीश्वर) ज्ञानस्वरूपेश्वर! (वयमध्वरे) मित्रभावे (बृहन्तं) सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं (द्युमन्तं) द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं (वीतिहोत्रं) वीतयो विज्ञापिता होत्राऽऽख्या यज्ञा येनेश्वरेण तं परमेश्वरं (त्वा)= (त्वां समिधीमहि) सम्यक् प्रकाशयेमहि। इत्येकः।।

(वयमध्वरे) अहिंसनीये यज्ञो (वीतिहोत्रं) वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मान्तं भौतिकं (द्युमन्तं) द्यौर्बहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं (बृहन्तं) बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं (कवे) (कविं) क्रान्तदर्शनं भौतिकं (त्वा) (तम्) (अग्ने) (भौतिकमग्निं) प्राप्तिहेतुं भौतिकं (समिधीमहि) सम्यक् प्रकाशयेमहि।। इति द्वितीयः।।

भाषार्थ : हे (कवे!) सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ! (अग्ने!) ज्ञानस्वरूप-परमेश्वर! हम (अध्वरे) मित्रता से रहने के लिए (बृहन्तम्) सबसे महान् तथा सुखों के बढ़ाने वाले (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले (वीतिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों के बतलाने वाले (त्वा) आप परमेश्वर को (समिधीमहि) हृदय में प्रदीप्त करें।। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है।

हम लोग (अध्वरे) हिंसा से रहित यज्ञ में (वीतिहोत्रम्) सुख प्राप्ति की हेतु अग्निहोत्र आदि यज्ञ क्रियाएँ जिससे सिद्ध होती हैं, उस भौतिक अग्नि को (द्युमन्तम्) बहुत कार्यों के साधक (कवे) क्रान्तदर्शी कवि रूप भौतिक (त्वा) उस (अग्ने) प्राप्ति के हेतु अग्नि को (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करें।। यह इस मन्त्र का द्वितीय अर्थ हुआ।

(हे.... अग्ने = जगदीश्वर! वयं (त्वा)= त्वां समिधीमहि)

भावार्थः अत्र श्लेषालङ्कारः। यावन्ति क्रियासाधनानि क्रियया साध्यानि च वस्तूनि सन्ति, तानि सर्वाणीश्वरेणैव रचयित्वा ध्रियन्ते। मनुष्यैस्तेषां सकाशाद् गुणज्ञान क्रियाभ्यां बहव उपकाराः संग्राह्याः।।

भावार्थ : इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है। जितने भी क्रिया के साधन तथा क्रिया से साध्य पदार्थ हैं, उन सबको ईश्वर ने ही रच कर धारण किया है। मनुष्य उनसे गुणगान और क्रिया के द्वारा बहुत से उपकारों को ग्रहण करें।

❑❑

अन्धविश्वास और मुक्ति ?

(धर्मपाल आर्य)

वैदिक संस्कृति आध्यात्म प्रधान संस्कृति है। जिस आध्यात्मिकता की नींव पर वैदिक संस्कृति आश्रित है उस (आध्यात्मिकता) की वेद-ज्ञान है। वेद ज्ञान अनादि है, वैदिक संस्कृति सनातन है, उसकी नींव (आध्यात्मिकता) भी सनातन है। **आध्यात्मिकता** मुक्ति का, भक्ति का और आत्मिक शक्ति प्राप्ति का माध्यम है। वेदों, शास्त्रों और उपनिषदों में वर्णित आध्यात्मिकता के नियमों को यदि हम सुविधानुसार परिभाषित करके उनके अनुसार समाज में आध्यात्मिकता को प्रचारित-प्रसारित करेंगे, तो ऐसी आध्यात्मिकता समाज में पापों और पाखण्डों को जन्म देने वाली होगी, ऐसी आध्यात्मिकता अन्धविश्वासों की जननी होगी। आध्यात्मिकता की आड़ में जन्मे अन्धविश्वास समाज को जीवन के नहीं, अपितु मृत्यु के रास्ते पर, अहिंसा के पथ पर नहीं, अपितु हिंसा के पथ पर ले जायेंगे, ऐसे अन्धविश्वास समाज को शान्ति के पथ पर नहीं, अपितु अशान्ति के पथ पर, सत्पथ की जगह कुपथ पर ले जाने वाले होंगे। ऐसे अन्धविश्वास समाज को समाधान की ओर नहीं, अपितु समस्याओं के मकड़जाल में फंसाने वाले होंगे।

जब से आध्यात्मिकता के क्षेत्र में अन्धविश्वासों ने दस्तक दी है, तब से बड़े हृदयविदारक प्रसंग सुनने और पढ़ने को मिल रहे हैं। कहीं भूत-प्रेत से मुक्ति के नाम पर पीड़ित को गर्म सलाखों से दागना, कहीं ऊपरी हवा अथवा नजर उतारने के नाम पर पीड़ित को जूतों से निर्दयतापूर्वक प्रताड़ना, आध्यात्मिकता के नाम पर कहीं जल-समाधि, कहीं अग्नि-समाधि और भूमि-समाधि (धरती में गाड़ना) तथा कहीं बलि-प्रथा जैसी कुप्रथाएं आध्यात्मिकता की आड़ लेकर समाज में बड़ी तेज गति से अपने पांव पसार रही हैं। अन्धविश्वास कभी भी सुख शान्ति के माध्यम नहीं बन सकते, अपितु वे दुःख, अशान्ति के ही कारण बनते हैं। कई बार तो अन्धविश्वास पूरे हंसते-खेलते परिवार को समूल समाप्त करने के कारण बनते हैं। हमारा समाज आज अन्धविश्वासों की दल दल में इतना गहरा धंस गया है कि असत्य सत्य की, अन्याय न्याय की, नास्तिकता आस्तिकता की, अधर्म धर्म की, दानवता मानवता की और पाप पुण्य की भूमिका निभाने की असफल कोशिश कर रहे हैं।

पिछले माह जुलाई की एक तारीख को दिल्ली के सन्तनगर (बुराड़ी) में एक दर्दनाक हादसा हुआ, जिसमें एक ही परिवार के ग्यारह सदस्यों ने सामूहिक रूप से आत्महत्या कर ली। सामूहिक आत्महत्या के दर्दनाक प्रकरण से न केवल दिल्ली में, अपितु पूरे देश में सनसनी फैल गई। अन्वेषण दल (जाँच टीम) ने जब घटना स्थल का बारीकी से निरीक्षण किया, तो उसे वहाँ ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं मिला, जिससे इरादतन हत्या किए जाने की पुष्टि होती। जाँचदल के सामने इस हृदयविदारक वारदात को सुलझाने की सबसे बड़ी चुनौती थी। हत्या और आत्महत्या इन्हीं दो बिन्दुओं पर पुलिस जाँच चल रही थी लेकिन कोई सफलता इस गुत्थी को सुलझाने में नहीं मिली।

आखिर इस घटना से पर्दा उठा उस रजिस्टर से, जो घर की तलाशी लेने के बाद जाँच टीम ने बरामद किया। उस रजिस्टर में लिखी बातों से यह सिद्ध हुआ कि आत्महत्या तो थी, लेकिन अन्धविश्वास के कारण।

मेरी जानकारी यदि सही है, तो अन्धविश्वास के कारण सामूहिक आत्महत्या का पहला मामला है। परिवार के ग्यारह सदस्य आत्महत्या के रास्ते पर अनायास ही नहीं चल दिये, अपितु पूरी योजनाबद्ध तरीके से पूरी हृदयविदारक घटना को अंजाम दिया गया। मरने वालों में सतत्तर (७७) वर्षीया नारायणा देवी, सतावन(५७) वर्षीया प्रतिभा, तैंतीस (३३) वर्षीया प्रियंका, पचास (५०) वर्षीय भुवनेश, अड़तालीस (४८) वर्षीया श्वेता, पच्चीस (२५) वर्षीया नीतू, तेईस (२३) वर्षीया मीनू, पन्द्रह (१५) वर्षीय शिवम शामिल थे। इनमें से तैंतीस (३३) वर्षीया प्रियंका की आत्महत्या से बीस दिन बाद शादी थी, लेकिन एक अन्धविश्वास ने एक हंसते-खेलते परिवार को समूल नष्ट कर दिया। यद्यपि संबंधीजन इस वारदात को सामूहिक आत्महत्या नहीं, अपितु योजनाबद्ध तरीके से की गई हत्या मान रहे हैं।

यदि जाँच के दौरान घटनास्थल (घर) से रजिस्टर नहीं मिलता, तो जाँच एजेन्सियों के लिए उक्त मामले को सुलझाना एक चुनौती बन जाता। घर से जब्त किए गए रजिस्टर में जो बातें लिखी गई हैं, उनको पढ़कर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि परिवार किस तरह अन्धविश्वास की दलदल में फंसा हुआ था। संस्कृत के किसी कवि ने लिखा है-

''असम्भवं हेममृगस्तय जन्म, तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुसां मलिनाः भवन्ति।।''

अर्थात् स्वर्ण-मृग का जन्म असम्भव है, फिर भी राम उसके लिए तृष्णायित हैं। प्रायः जब किसी का विनाश निकट हो, तो बुद्धिमानों की बुद्धि विपरीत पथगामिनी हो जाती है। रामधारी सिंह दिनकर ने ठीक ही लिखा है-

'जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।' सामूहिक आत्महत्या की योजना का वास्तविक सूत्रधार पैंतालीस (४५) वर्षीय ललित था, जो पिता की मौत के कारण मानसिक तनाव में रहता था और उसकी असहज वृत्तियों का परिवार पर भी नकारात्मक प्रभाव था, जिसकी परिणति सामूहिक आत्महत्या के रूप में हुई।

अब मैं अपने प्रबुद्ध पाठकों के सामने रजिस्टर की वे प्रमुख बातें रखना चाहता हूँ, जिनसे इस परिवार के अन्धविश्वास में फंसे होने की पुष्टि होती है। उस रजिस्टर के ५२ पन्ने बड़ की पूजा को लेकर लिखे गए हैं। उसमें लिखा है-''सात दिन लगातार पूजा करनी है, इस दौरान अगर कोई घर में आए तो पूजा अगले दिन नए सिरे से करनी है। पट्टियाँ अच्छे से बांधनी हैं। शून्य के अलावा कुछ नहीं दिखना चाहिए। परिवार के सभी लोगों की सोच एक जैसी होनी चाहिए। कमरे में हल्की रोशनी होनी चाहिए। क्रिया रात के बारह बजे करनी है, इससे पहले हवन करना है। अगर घर की बुजुर्ग महिला खड़ी नहीं हो सकती, तो वह अलग कमरे में लेट सकती है। अपने हाथ खुद बाँधने हैं। क्रिया के बाद दूसरा हाथ खोलेगा। ललित की बहिन को अलग से लटकना चाहिए।''

आगे रजिस्टर में लिखा है-''परमात्मा से मिलने वाले दिन खाना बाहर से मँगवाना है। इसके साथ-साथ यह भी लिखा है कि लोहे के जंगले से सभी इसलिए लटकें क्योंकि हम मरने नहीं जा रहे, अपितु परमात्मा से मिलकर हम वापस आएंगे।'' रजिस्टर में उल्लिखित वाक्यों से एक बात स्पष्ट है कि भले ही ललित इस सामूहिक आत्महत्या के आयोजन का सूत्रधार है लेकिन उसके तौर-तरीकों को उपलब्ध कराने वाला, सिखाने

वाला कोई और भी हो सकता है। इसकी संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। क्योंकि ललित मानसिक रूप से बीमार रहता था, तो कथित मोक्षप्राप्ति के रजिस्टर में कहे गए उपाय ललित के बीमार मस्तिष्क की उपज नहीं हो सकते। ललित को भी कोई प्रेरित करने वाला अवश्य रहा होगा।

इस प्रक्रिया में विचारणीय विषय यह है कि क्या मुक्ति-प्राप्ति के समाधानों में इस प्रकार (आत्महत्या) का उपाय भी किसी शास्त्र, किसी वेद, किसी उपनिषद् अथवा गीता, रामायण में उल्लिखित है? उत्तर है नहीं और केवल नहीं। क्योंकि आत्महत्या तो वेद के अनुसार पाप होता है-

असुर्या नाम ते लोकाः अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।

अर्थात् जो आत्महन्ता होते हैं, वहाँ वेद ज्ञान का प्रकाश नहीं पहुँचता। अब तक मानसिक तनाव, शारीरिक तनाव, (बीमारी) पारिवारिक तनाव, सामाजिक तनाव, बाहरी तनाव, वैयक्तिक तनाव आदि आत्महत्या के कारण माने जाते रहे हैं। लेकिन ईश्वर से मिलने के नाम पर और मुक्ति (मोक्ष) प्राप्ति के नाम पर आत्महत्या जैसे जघन्य और अति निन्दनीय कृत्य को मोक्षप्राप्ति का साधन बनाना समाज के नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पतन की शुरूआत है। मानसिक तनावग्रस्त व्यक्ति इस प्रकार के अन्धविश्वासों के जाल में सहजता से फंस जाते हैं। इस तरह के अन्धविश्वास समाज, राष्ट्र, परिवार और व्यक्ति के लिए घातक हैं क्योंकि मोक्ष का साधन आत्महत्या नहीं, अपितु ज्ञानयोग है। हमारे धार्मिक साहित्य में आता है कि

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।।

अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है। परमात्मा से मिलने के नाम पर आत्महत्या का सिद्धान्त कुछ-कुछ वैसा ही है, जैसा कि नारायणदर्शी सम्प्रदाय है, जिसका वर्णन ग्यारहवें समुल्लास (सत्यार्थ प्रकाश) में महर्षि दयानन्द ने बड़े विस्तार से किया है। कहते हैं कि किसी अपराधी को राजा ने उसकी नाक काटने का दण्ड दिया। नाक कटने के बाद वह अपराधी प्रसन्नता से झूमते हुए बोला कि मुझे नाक कटने के बाद साक्षात भगवान् के दर्शन हो गये हैं। यदि आप भी भगवान के दर्शन करना चाहते हो, तो नाक कटवा लो क्योंकि यही नाक भगवान के दर्शनों में बाधक बनी हुई है। उसके इस पाखंडरूपी जाल में फंसकर हजारों लोगों ने अपनी नाक कटवा ली और वो अपराधी उन नाककटों का सरगना बना तथा उनके मत का नाम नारायणदर्शी सम्प्रदाय हो गया। एक के मतानुसार परमात्मा के दर्शन में नाक बाधा बनी हुई थी, तो नाक को कटवा दिया, दूसरे के अनुसार परमात्मा के दर्शन में जीवन बाधक था, तो सब (भाटिया परिवार) ने जीवन को ही समाप्त कर लिया। वाह! परमात्मा को पाने व मोक्ष प्राप्ति के क्या अद्भुत साधन का आविष्कार किया है!

इस विनाशकारी साधना का आविष्कारकर्ता तो दुस्साहसी है ही लेकिन व्यावहारिक प्रयोग करने वाले उससे भी अधिक दुस्साहसी हैं। अन्धविश्वास हमारे सभ्य व सांस्कृतिक समाज के लिए सबसे बड़ा खतरा है। यदि वक्त रहते इस प्रकार के अन्धविश्वासों और उनके सूत्रधारों के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष नहीं किया गया, तो ये **अन्धविश्वास** समाज और राष्ट्र के लिए नासूर बन जाएंगे। इस प्रकार की समाज विनाशक कुप्रथाओं के खिलाफ हम सबको संगठित होकर निर्णायक संघर्ष का सामूहिक शंखनाद करने की आवश्यकता है। अन्यथा

सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।

❑❑

शब्द प्रमाण-2

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो.- ०९८४५०५८३१०)

पिछले माह मैंने शब्द प्रमाण क्या होता है और कहाँ-२ उसकी प्रवृत्ति होती है, इस विषय पर लिखा था। उसमें मैंने लिखा था कि माता-पिता के वचन से आरम्भ होकर गुरुओं के वचनों तक, सभी ज्ञानपरक कथन शब्द प्रमाण होते हैं। क्योंकि इनमें से पहला तथ्य (माता-पिता के वचन) किसी शास्त्र में नहीं पाया जाता और आप ने भी कहीं नहीं पढ़ा-सुना होगा, इसलिए सम्भव है कि आपको इस विषय में संशय हो। और यह सत्य भी है कि यह मेरे चिन्तन का निष्कर्ष है। अति-संयोग से, अपने ब्रहदारण्यकोपनिषत् के अध्ययन के अन्तर्गत मुझे इसका शास्त्रीय प्रमाण मिल गया। इस लेख में उसी को प्रस्तुत कर रही हूँ।

ब्रहदारण्यक के चतुर्थ अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में एक कथा है कि किसी समय विदेहराज जनक की सभा में ऋषि याज्ञवल्क्य घूमते-घूमते पहुँच गए। राजा जनक ज्ञानप्रिय थे, यह जगप्रसिद्ध था। वे सदा ही ऋषियों और आचार्यों से ज्ञान प्राप्त करते रहते थे। गोष्ठियों का आयोजन करके, विद्वानों में शास्त्रार्थ कराते रहते थे। याज्ञवल्क्य के पधारने पर, उन्होंने हास्य से पूछा, "क्यों याज्ञवल्क्य किस कारण से आए हो? पशुओं के लिए अथवा कुछ सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए?" याज्ञवल्क्य ने भी हंसकर उत्तर दिया, "महाराज, दोनों ही के लिए।" पहले दूसरी चेष्टा को पूर्ण करने के लिए, आगे दोनों का वार्तालाप इस प्रकार हुआ-

यत् ते कश्चिदब्रवीत् तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे जित्वा शैलिनिर्वाग् वै ब्रह्मेति। यथा मातृमान् पितृमान आचार्यवान् ब्रूयात् तथा तच्छैलिनिरब्रवीद्वाग्वै ब्रह्मेत्यवदतो हि किं स्यादित्यब्रवीत् तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत् सम्राडिति। स वै नौ ब्रूहि याज्ञवल्क्य! वागेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रज्ञेत्येतदुपासीत। का प्रज्ञता याज्ञवल्क्य? वागेव सम्राडिति होवाच। वाचा वै सम्राड्बन्धुः प्रज्ञायत; ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस, इतिहासः, पुराणं, विद्या, उपनिषदः, श्लोकाः, सूत्राणि-अनुव्याख्यानानि, व्याख्यानानीष्टं हुतमाशितं, पायितमयं च लोकः, परश्च लोकः, सर्वाणि च भूतानि वाचैव सम्राट् प्रज्ञायन्ते। वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म। नैनं वाग्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिरक्षन्ति। देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते। हस्त्यृषभं सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः। स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति।। ब्रहदारण्यको० ४/१/२।।

इस वार्तालाप में अनेकों उपदेश हैं, इसलिए मैं इसको विस्तार से नीचे दे रही हूँ-

याज्ञवल्क्य- महाराज! आपसे अन्य ऋषियों ने जो कहा, उसे हम सुनते हैं।

जनक- जित्वा शैलिनि आया था। उसने कहा, "वाक् ही ब्रह्म (सबसे महत्वपूर्ण) है।''

याज्ञवल्क्य- जैसे कोई माता, पिता व आचार्य से सीखा हुआ बोलता है, वैसा ही उस शैलिनि ने कहा कि वाक् ही ब्रह्म है (अर्थात् हमारी पहली गुरु माता, दूसरे पिता और तीसरे आचार्य होते हैं। उनसे विद्या प्राप्त करके हमारे विचार व संस्कार बनते हैं। याज्ञवल्क्य का यह वचन प्रसिद्ध है और इसका उल्लेख जहाँ-तहाँ किया जाता है।)। क्योंकि बिना वाणी के क्या होगा (अर्थात् मनुष्य मूढ़ ही रह जायेगा, उसे कोई भी ज्ञान नहीं होगा। पक्षी आदि भी बोलकर सूचना का आदान-प्रदान करते हैं)?! तो क्या यह बताते हुए उसने आपको वाक्

का आयतन और प्रतिष्ठा बताई,

जनक- नहीं वह तो नहीं बताई।

याज्ञवल्क्य- सम्राट्! फिर तो उसने केवल एक पाद ही बताया।

जनक- याज्ञवल्क्य! हमें आप पूरा बताइये।

याज्ञवल्क्य- वाक् ही वाक् का आयतन = फैलाने वाला है। आकाश उसकी प्रतिष्ठा = आश्रय है। प्रज्ञा मानकर उसकी उपासना कीजिए।

जनक- याज्ञवल्क्य! वाक् में क्या प्रज्ञता है?

याज्ञवल्क्य- सम्राट्! वाक् की प्रज्ञता वाक् ही है। हे सम्राट्! वाणी से ही बन्धु (अपने आत्मीय) विशेष रूप से जाने जाते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण अन्य सभी प्रकार की विद्याएं, अध्यात्म-सम्बन्धी उपनिषदें, काव्यरूपी श्लोक, सूत्रबद्ध विद्याएं, अनुव्याख्यान और व्याख्यान, विभिन्न याग-सम्बन्धी ज्ञान, दान देने योग्य खान-पान-पृथिवी लोक, और अन्य लोक, व सारे प्राणी- ये सब वाक् द्वारा ही जाने जाते हैं।

हे सम्राट्! वाक् ही परम ब्रह्म है- यह सत्य ही है। जो वाणी को इस प्रकार जानकर उसका अध्ययन करता है, उसको वाणी भी नहीं छोड़ती, सभी प्राणी उसकी रक्षा करते हैं और वह देव बनकर देवों के पास पहुँच जाता है।

जनक- हम आपके विद्यादान से अत्यन्त प्रसन्न होकर आपकी हाथी जैसा एक सांड और हजार गाय देते हैं। (ज्ञान के ऐसे पारखी और उदार सम्राट् हमारे देश में पाए जाते थे!)

याज्ञवल्क्य- मेरे पिता का मानना था कि बिना शिष्य को पूर्णतया सिखाए हुए, दक्षिणा नहीं लेनी चाहिए। (काश, यह परम्परा आज भी चली आ रही होती और शिक्षक केवल धन बटोरने में न लगे होते!)

अब हम याज्ञवल्क्य के प्रवचन को समझते हैं। जो यहाँ 'वाक्' कही गई है, वह 'वाणी का अपर नाम है। यह 'वाणी' जानवरों की तरह अस्पष्ट वाक् नहीं है, अपितु सुसंस्कृत भाषा है, जो कि केवल मनुष्य ही बोलते हैं।

अब याज्ञवल्क्य कहते हैं कि वाक् ही प्रज्ञा है- मस्तिष्क में स्थित ज्ञान है। वाणी से उत्पन्न ज्ञान प्रधानतया शब्दरूप में ही हमारे मस्तिष्क में रहता है, चित्र अथवा अनुभव रूप में बहुत कम होता है। उस ज्ञान को मनन द्वारा 'फैलाया' जाता है, सो वह भी शब्दरूप में किया जाता है। इसलिए वाणी का आयतन = फैलाने वाली, वृद्धि करने वाली वाणी ही है। उसकी प्रतिष्ठा = आश्रय आकाश है। शब्द आकाश में स्थिति होता है, यह तो सर्वमान्य है।

सो, यह भाषा शब्द प्रमाण हुई। इसका क्या अर्थ है? जो भी वस्तु हममें सत्य ज्ञान उत्पन्न करे, उसे प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान व शब्द ऐसे ही प्रमाण हैं। इसलिए न्यायदर्शन में गौतम कहते हैं-

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानम्... प्रत्यक्षम्।। न्याय० १/१/४।।- अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसी तरह अन्य सभी प्रमाणों को जानना चाहिए। प्रमाण का अर्थ कोई न्यायालय में साक्षी देना नहीं है, अपितु जिस किसी से भी मस्तिष्क में प्रज्ञा उत्पन्न होती है, उसे प्रमाण कहा जाता है। इसीलिए इसे प्र+मान = विशेष रूप से मापने वाला कहा गया है। सो, जो कुछ भी हमें इस संसार की वस्तुओं को अच्छे प्रकार माप के, उसका सत्य ज्ञान दे, उसे प्रमाण कहते हैं।

अब याज्ञवल्क्य जो कहते हैं कि वाणी से ही बन्धु जाने जाते हैं, यह बड़ा आश्चर्यजनक कथन है। बन्धु को तो अन्य जन्तु भी जान जाते हैं। माता को शिशु अनायास ही जान लेता है। सो, वाणी से ही हम इस ज्ञान को क्यों मानें? प्रत्यक्ष व अनुमान प्रमाण के ही अन्तर्गत यह आ जाना चाहिए। सो, यहाँ आप पायेंगे

कि यह सत्य है कि कौओं का एक झुण्ड दूसरे झुण्ड से अपनी अलग पहचान रखता है। झुण्ड के सदस्य एक-दूसरे को पहचानते हैं और उनके सम्बन्धों में भी विविधता होती है। पति कौआ अपनी पत्नी को पहचानता है। तथापि उस समझ में अत्यधिक स्पष्टता नहीं होती। "यह मेरा भाई है"- सम्भवतः कौआ इस सम्बन्ध को न समझ सके। उसके मामा, मामी, आदि अन्य बन्धुओं को सम्भवतः वह इस रूप में न जाने, केवल निकट वा विशिष्ट सम्बन्धों को ही वह समझे। जब हम इन सम्बन्धों को एक नाम दे देते हैं, तो वे अत्यन्त स्पष्ट हो जाते हैं और हमारे स्मृति में व्यवस्थित रूप से बैठ जाते हैं। यही याज्ञवल्क्य कह रहे हैं। इसी प्रकार, जो मैंने आपको पिछले मास बताया था, माता-पिता के वचनों से हम पहले-पहल संसार को शब्दों में ढालना सीखते हैं, सम्बन्धों को जानना प्रारम्भ करते हैं। वह सब शब्द प्रमाण होता है।

आगे जो याज्ञवल्क्य ने ऋग्वेद आदि और व्याख्यान आदि से प्राप्त विद्याओं को वाक् में गिना है, उससे पूर्णतया पुष्टि हो जाती है कि याज्ञवल्क्य शब्द प्रमाण की चर्चा कर रहे हैं, क्योंकि वेदादि शब्द प्रमाण हैं, इसमें तो सभी का मतैक्य है। इस पृथिवी पर होने वाले पदार्थों व क्रियाओं का ज्ञान व अन्य लोकों आदि का ज्ञान भी शब्द प्रमाण से होता है, यह तो स्पष्ट ही है।

परन्तु कण्डिका में कुछ विशेष भी पढ़ा गया है- **आशितं पायितं च-** अर्थात् जो खिलाया गया हो अथवा पिलाया गया हो, वह भी वाक् से जाना जाता है। स्वयं हमने क्या खाया व पिया, उसकी चर्चा यहाँ नहीं हो रही है, अपितु जो हमने अन्यों को खिलाया व पिलाया हो, अथवा जो खिलाने व पिलाने योग्य हो, अर्थात् दान करने योग्य हो। भारतीय परम्परा में जहाँ एक ओर घर में बने भोजन को अन्यों से बाँट कर खाने को श्रेष्ठ माना गया है, वहीं विशेष आयोजनों पर दान दिए जाने वाले अन्नपान आदि के कुछ नियम थे। इन अन्तिम का ही इस कण्डिका में विवरण किया गया है, जो कि हम प्रसंग से भी जान सकते हैं- इससे बिल्कुल पहले **'इष्टं हुतं'** की बात हुई है, उसके बाद इसको गिना गया है, अर्थात् बड़े यागों और छोटे हवनों की विद्या के साथ। इन होमों में ही प्रायः बहुत दान दिया जाया करता था, आमन्त्रित जनों को खानपान दिया जाता था और घर ले जाने को भी अन्न प्रदान किया जाता था। इस विषय में मनु कह कहना है-

सर्वोषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।।
मनुस्मृति. ४/२३३।।

अर्थात् संसार के सारे दानों में जैसे जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल, स्वर्ण और घी, इनसे भी महान सत्य विद्या और विशेषकर वेद व अध्यात्म विद्या का दान है। इस प्रकार मनु ने दान के लिए उपयुक्त जल आदि कुछ पदार्थ गिनाए हैं, और उनमें सर्वोपरि वेदों के ज्ञानदान को रखा है। सो, दान देने के लिए क्या उपयुक्त है, यह भी एक ज्ञान है।

इस प्रकार याज्ञवल्क्य के शब्दों में धर्मज्ञान के विभिन्न आयाम और स्रोत निर्दिष्ट हैं। ये सभी शब्द प्रमाण हैं, क्योंकि ये ज्ञान उत्पन्न करते हैं। यही नहीं, इस प्रकार शब्द प्रमाण को समझने के बाद हम उनके पूर्व वचनों को देखतें हैं- **यथा मातृमान् पितृमान आचार्यवान् ब्रूयात्।** अर्थात् जिस प्रकार माता, पिता व आचार्य से शिक्षित बोलता है। यहाँ जिस शिक्षा की चर्चा हो रही है, उसमें प्रधानतया मौखिक शिक्षा है। वह शिक्षा भी शब्द प्रमाण के अन्तर्गत है। यही मेरा पिछले लेख में कथन था, जो कि याज्ञवल्क्य के वचनों से सिद्ध होता है।

उपर्युक्त संवाद के जो अन्य उपदेश हैं, वे मैंने कोष्ठकों में वहीं पर दे दिए हैं। उनपर भी अवश्य

शेष पृष्ठ २४ पर

इतिहासकार की कलाकारी (२)

(राजेशार्य आट्टा, मो0:-०९९९१२९९३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! एक इतिहासकार के लिए यह अच्छी बात नहीं है कि वह किसी सभा में खड़ा होकर पहले तो यह कहे कि अल्पसंख्यक मुस्लिम शासक बहुसंख्यक हिन्दुओं के मन्दिर कैसे तुड़वा सकते थे? और अगले ही क्षण यह कहे कि हाँ, मन्दिर टूटे हैं, औरंगजेब ने तोड़े हैं, महमूद गजनवी ने भी तोड़े हैं। दो-एक और भी शासकों के नाम गिनाए जा सकते हैं, जिन्होंने मंदिर तोड़े हैं।... मन्दिर टूटे हैं- इस विषय में कोई मतभेद नहीं है, लेकिन मन्दिर टूटने से भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि उससे क्या मतलब हल हुआ, उसके पीछे क्या मंशा थी।

समीक्षा- पहले तो इतिहासकार असगर अली इन्जीनियर कह रहे थे कि मुस्लिम शासकों को मन्दिर तोड़ने वाले और हिन्दुओं पर जुल्म करने वाले प्रचारित करना हिन्दू-संगठनों की साजिश है, अब कहने लगे कि मन्दिर तो टूटे हैं, पर क्यों? हम भी तो मानते हैं कि घटना से कारण अधिक महत्वपूर्ण होता है और वह कारण भी तत्कालीन लेखकों की लेखनी के माध्यम से हम तक पहुँचा है। पहले लेख में हमने देखा कि मन्दिर की सोने-चाँदी की मूर्तियाँ तोड़कर लुटेरों ने अपने खजाने भरे, पत्थर की मूर्तियाँ मस्जिद की सीढ़ियों में लगा दीं, व मन्दिर या तो नष्ट कर दिये या मस्जिदों में परिवर्तित कर दिये गये। यहाँ दोनों बातें हैं- धन प्राप्ति भी और हिन्दुत्व का नाश भी।

यदि लेखक मन्दिर तोड़ने का कारण केवल धन सम्पत्ति लूटना ही मानता है, जैसा कि आगे चलकर महमूद गजनवी के विषय में लिखा है, तो मूर्ति मस्जिद की सीढ़ियों में क्यों लगवाई? क्या लेखक शाहजहाँ, औरंगजेब, टीपू सुल्तान आदि को भी महमूद की तरह लुटेरा मानने के लिए तैयार है, जबकि उनके दरबारी लेखक तो उन्हें इस्लाम का सच्चा सेवक लिखते हैं।

इतिहासकार ने फिर पलटा खाया और कहा- "किसी भी घटना के जो प्रत्यक्षदर्शी होते हैं, वे भी पक्षपातग्रस्त हो जाते हैं। प्रत्यक्षदर्शी उन्हीं-उन्हीं कारणों को पसन्द करते हैं, जो उनकी पसन्द या स्वार्थ के आसपास स्थित होते हैं। बाकियों की वे अवहेलना कर देते हैं।"

समीक्षा- यदि इसी सिद्धान्त के आधार पर पी.एन. ओक जैसे राष्ट्रवादी इतिहासकार कहें कि मुस्लिम काल के ऐतिहासिक ग्रन्थ सरासर धोखा हैं- हिन्दू लड़कियों से किये गये बादशाओं के विवाह जबरदस्ती अपहरण हैं, उनकी शिकार यात्रा हिन्दुओं के विरुद्ध जिहाद है और लाल किला, ताजमहल, मकबरे, जामा मस्जिद आदि हिन्दू भवन हैं, जिन पर मुस्लिम शासकों की (निर्माता होने की) मोहर लगवाई गई है, जिसे मुस्लिम शासकों द्वारा डाकुओं का दमन करना बताया जाता है, वह हिन्दुओं के स्वतंत्रता संग्राम को कुचलना था, तो कुछ लोग इसे भगवाकरण कहने लगते हैं।

जहाँ तक प्रत्यक्षदर्शी लेखकों द्वारा अपनी पसन्द के ही कारणों को लिखने की बात है, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मुस्लिम काल के अधिकतर इतिहासकार वैज्ञानिक थे, उन पर धन की वर्षा होती रहती थी। इब्नबतूता ने इसका विस्तार से वर्णन किया है। फिर सोचिये, वे अपनी पसन्द से लिखेंगे या बादशाह की? यह अलग बात है कि उनके द्वारा लिखी गई कुछ बातें हिन्दुओं के दृष्टिकोण से और वर्तमान परिस्थिति में क्रूरता व जंगलीपन ही कही जाएंगी। जैसे- बाबरनामा में बाबर ने बड़ी शान से लिखा है कि उसने अनेक स्थानों पर (युद्धों में) पराजित व मारे गए काफिरों

(हिन्दुओं) के सिर कटवा कर उनकी मीनारें बनवाईं और हिन्दुस्तान के कई क्षेत्रों को दारूल हर्व से दारूल इस्लाम में बदल दिया।

इतिहासकार ने प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा उपेक्षित किए गए (?) कारणों की खोज करते हुए कहा- "सोमनाथ मन्दिर पर हमले से ठीक पहले महमूद ने मुलतान शहर पर हमला किया था। वहाँ मुसलमान बादशाह था। उस हमले में लाहौर के राजा आनन्द पाल ने महमूद की मदद की थी। महमूद ने इस मुस्लिम बादशाह को परास्त करके सारे मुलतान शहर को तहस-नहस कर दिया था, लूटपाट की थी, और वहाँ एक भी मस्जिद तक सबूत नहीं बची थी। यह वर्णन कलहन द्वारा रचित 'राजतरंगिनी' में पाया जाता है। तो फिर महमूद ने मस्जिदें क्यों तोड़ीं, वहाँ तो मूर्तिपूजा नहीं होती थी?

समीक्षा- यहाँ इतिहासकार कलाकारी दिखा गया। ये लोग सब जगह यही करते हैं। मुल्तान हमले को सोमनाथ हमले से ठीक पहले कहा, जबकि मुल्तान हमला १००६ ई० में हुआ और सोमनाथ पर १०२५ ई० में हुआ था। सोमनाथ हमले से ठीक पहले तो १०२२ ई० में ग्वालियर-कालिंजर पर हुआ था। दूसरी बात, राजा आनन्दपाल द्वारा महमूद की सहायता करना बताई। जबकि इतिहासकार डॉ० आशीर्वादीलाल ने लिखा है कि मुल्तान को विजय करने से पूर्व महमूद ने झेलम के बायें किनारे पर स्थित भेरानगर पर आक्रमण किया। आनन्दपाल ने उसका विरोध किया, किन्तु उसे मार्ग से धकेलते हुए महमूद १००६ ई० में मुल्तान पर चढ़ गया और उस पर अधिकार कर लिया। यदि आनन्द ने महमूद की सहायता की होती, तो १००८-०९ ई० में महमूद ने आनन्दपाल पर आक्रमण न किया होता। वास्तव में तो आनन्दपाल ने मुल्तान के राजा की सहायता की थी। इससे कुपित होकर ही महमूद ने आनन्दपाल की राजधानी वैहिन्द (पेशावर के निकट) पर आक्रमण किया था।

तीसरे बात, मुल्तान का मुसलमान राजा फतेह दाऊद करमाथी सम्प्रदाय का था, जो शिष्य था। यदि गजनवी ने उनकी मस्जिदें तोड़ी भी थीं, तो कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसा तो पाकिस्तान में अब भी होता है- ''सुन्नी मुसलमान शियाओं को काफिर मानते हैं, उनकी हत्याएँ करते हैं, उनकी मस्जिदों में बम-विस्फोट करते हैं। इस्लाम में यह खूनी खेल प्रारम्भ से चला आ रहा है।

चौथी बात, महमूद के सोमनाथ के आक्रमण से ठीक पहले लाहौर का राजा आनन्दपाल नहीं था, अपितु उसका पौत्र भीमपाल (त्रिलोचनपाल का पुत्र) था। देखिये, एक इतिहासकार कैसी भ्रान्त जानकारी अपने श्रोताओं को परोस रहा है। सोचिये, इस घटना के पीछे क्या कारण हो सकता है? इतिहासकार ने एक और सूत्र का उल्लेख करते हुए कहा कि महमूद की फौज में ५०% हिन्दू थे, १२ हिन्दू सेनापति थे। ये सभी सोमनाथ मन्दिर के हमले में उसी प्रकार तैनात हुए थे, जैसे मुल्तान शहर में मस्जिद तोड़ने में मौजूद थे। अर्थात् महमूद मूर्तिपूजा का विरोधी नहीं था। यदि वह मूर्तिपूजा के खिलाफ होता, तो सबसे पहले वह वामियान की बुद्ध प्रतिमाओं को तोड़ता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। पिछले १४०० सालों में किसी भी मुस्लिम शासक ने उनको हाथ तक नहीं लगाया। तालिबानों ने ही उन मूर्तियों को तोड़ा है।"

समीक्षा- यद्यपि अलबिरूनी का यह कथन अतिशयोक्ति लगता है कि महमूद गजनवी के आक्रमण से हिन्दू धूल कणों के समान बिखर गये थे और लोगों की जबान पर अतीत की कहानी बनकर रह गए, तथापि यह सिद्ध करता है कि महमूद की सेवा में ५०% हिन्दू (सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण के समय) होने की बात झूठी है। हो सकता है तब तक (१०२५ ई०) धन लूटने के लालच से कुछ डाकू लुटेरे महमूद के साथ मिल गये हों, पर वे सेना का ५०% अर्थात् आधा हिस्सा नहीं हो सकते। अरबी इतिहासकारों के आधार पर यह कहा जाता है कि मुल्तान की मस्जिद तोड़ते समय (१००६ ई०) राजा आनन्दपाल की सेना (हिन्दू) महमूद के साथ

थी। पर श्री पी०एन० ओक ने शत्रु लुटेरे की सहायता के लिए आनन्दपाल द्वारा हिन्दू सेना की टुकड़ी भेजने को अरेबियन नाइट के गप्पियों की कहानी माना है क्योंकि बाद में आनन्दपाल ने महमूद का दृढ़ता से मुकाबला किया था।

मुस्लिम इतिहासकार तो यह भी कहते हैं कि महमूद ने अपनी तलवार से मूर्ति (सोमनाथ) के दो टुकड़े कर दिये। जबकि यह **'पाषाण लिंगम्'** किसी भी तलवार से तोड़ा नहीं जा सकता था। उन्हीं इतिहासकारों के एक और झूठ का पर्दाफाश करते हुए जयचन्द्र विद्यालंकार ने लिखा है कि सोमनाथ के रास्ते में वे अजमेर का लूटा जाना भी लिखते हैं। जबकि अजमेर की स्थापना महमूद के प्रायः पौनी शताब्दी (७५ वर्ष) बाद अजय राज चौहान द्वारा १११३ ई० के लगभग की गई थी।

सम्भवतः सोमनाथ मन्दिर को लूटते समय ५०% हिन्दू सेना और १२ हिन्दू सेनापतियों का होना भी अतीत या वर्तमान के किसी इतिहासकार की कल्पना है। कानपुर दंगा जाँच समिति (१६३१ ई०) की रिपोर्ट में भी ऐसा ही लिखा गया था, पर उसके सदस्य श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन ने पृथक टिपपणी में लिखा था- "महमूद और औरंगजेब इस्लाम के सच्चे ऐतिहासिक प्रतिनिधि नहीं हैं,वे सबसे बुरे इस्लाम का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

महमूद यदि मूर्तिपूजा का विरोधी नहीं था, तो क्या सोमनाथ मन्दिर में पूजा करने गया था? सभी इतिहासकारों ने उसको मूर्तिभंजक लुटेरा लिखा है अर्थात् वह केवल लुटेरा नहीं था, अपितु इस्लाम का ध्वज- वाहक भी था, तभी तो उसने मन्दिरों की मूर्तियाँ मस्जिदों की सीढ़ियों में लगवाई थीं। हिन्दू मन्दिरों की मूर्तियाँ तोड़ने से महमूद को सोने-चाँदी की प्राप्ति हो रही थी, जबकि बुद्ध की मूर्तियों (वामियान) में ऐसा कुछ नहीं था, फिर पहाड़ों में सिर फुड़वाने कौन जाता और पहाड़ों में खुदी उन विशाल मूर्तियों की कोई पूजा भी तो नहीं कर रहा था। केवल बुद्ध प्रतिमाएँ न तोड़ने से ही महमूद को सहिष्णु नहीं कहा जा सकता।

गजनवी आदि द्वारा मन्दिर लूटना अतीत का सत्य है, उसका वर्तमान से कोई लेना देना नहीं है। भारत के अधिकतर मुस्लिमों के पूर्वज किसी समय हिन्दू ही थे। गजनवी, गौरी आदि के अत्याचारों के कारण यदि कोई हिन्दू भारत के वर्तमान मुस्लिमों से घृणा-द्वेष करता है, यह उसकी मूर्खता है और यदि कोई मुस्लिम उस क्रूरता पर गर्व करता है या कोई कम्युनिस्ट उसे छिपाता है, तो यह उसकी धूर्तता है। आवश्यकता है वर्तमान को सुधारने की कि अब सामाजिक समरसता में विष घोलने वाला कोई ऐसा कार्य न हो।

इञ्जीनियर इतिहासकार असगर अली ने कम्यूनिस्ट लेखिका रोमिला थापर को प्रमाण मानकर आगे कहा है कि सोमनाथ मन्दिर का मुद्दा हिन्दू-मुस्लिम को लड़ाने के लिए अंग्रेजों ने प्रचारित किया है। १६४८ से पहले तक भारत में सोमनाथ मन्दिर किसी भी आलोच्य विषय के तौर पर नहीं था। ब्रिटिश वर्णन के प्रचार के बाद ही लोकमुख से यह बात फैलने लगी कि महमूद गजनवी ने सोमनाथ मन्दिर तोड़ा था। रोमिला थापर ने यह और दिखाया है कि सोमनाथ मन्दिर समिति ने मन्दिर के इलाके के अन्दर ही मुसलमानों के लिए एक मस्जिद बनाने की सम्मति दी थी। अगर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच दुश्मनी होती तो वहाँ मस्जिद बनाने के लिए कैसे जगह दी होती?

समीक्षा- यदि १६४८ से पहले सोमनाथ मन्दिर देश की उच्च राजनीति आलोच्य विषय न होता, तो आजादी के एकदम बाद उसके पुनर्निमाण का मामला न उठता और सरदार पटेल इसकी भूमिका न तैयार करते। प्रधानमंत्री नेहरू के मना करने पर भी राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद सोमनाथ मन्दिर का उद्घाटन करने नहीं जाते। यदि महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ मन्दिर तोड़ने की बात अंग्रेजों ने ही प्रचारित की होती, तो महर्षि दयानन्द ने १८७५ में लिखे अपने ग्रन्थ में मूर्ति-

पूजा की हानि बताते हुए इसका विस्तार से वर्णन कैसे कर दिया?

वास्तव में सोमनाथ का मन्दिर सामान्य मन्दिर नहीं था। उसकी मान्यता पूरे देश में थी। तभी तो अलबिरूनी ने लिखा है कि सोमनाथ की मूर्ति (गुजरात) के लिए प्रतिदिन गंगाजल का एक लोटा (उत्तर प्रदेश) और कश्मीर से फूलों की एक टोकरी लाई जाती थी। महमूद द्वारा लूटे जाने पर भी लोगों में उसकी स्मृति बनी रही फिर मालवा के राजा भोजदेव परमार और राजा बीसलदेव चौहान (अजमेर) ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। सौराष्ट्र के राजा कुमारपाल (सिद्धराज जयसिंह के पुत्र) ने ११६९ ई० में पुनर्निर्माण कराया। गुजरात पर आक्रमण कर १२९७ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने इसे लूटा, तो १३०८ ई० में बन्थाली (जूनागढ़) के राजा महीपाल देव ने इसका पुनर्निर्माण कराया। १४५१ ई० में गुजरात के नवाब महमूद बेगड़ा ने जूनागढ़ पर आक्रमण कर इस मन्दिर को लूटा व क्षतिग्रस्त किया। श्री के०का० शास्त्री महामहोपाध्याय की पुस्तक **'श्री सोमनाथ : युगवर्ती पुननिर्माण'** को उद्धृत कर जगदीश प्रसाद साहनी ने लिखा है कि १६६९ ई० में औरंगजेब ने आक्रमण कर मन्दिर को नुसकान पहुंचाया। फिर भी हिन्दू जनता पूजा करती रही, तो १७०६ ई० में इसे नष्ट कर मस्जिद का रूप दे दिया गया। इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई होल्कर ने १७८३ ई० में पूर्व दिशा के खांचे में नया छोटा मन्दिर बनवाया। सन् १८१२ ई० में बड़ौदा के गायकवाड़ ने मन्दिर का अधिकार अपने हाथ में लिया और महाराष्ट्रीय पुरोहितों की नियुक्ति की। स्वतंत्रता के बाद सरदार पटेल (उपप्रधानमंत्री) सोमनाथ पहुँचे, तो मन्दिर की दुर्दशा देखकर विह्वल हो गये। उन्होंने तभी मन्दिर पुनर्निर्माण का संकल्प लिया।

यह सत्य है कि १८४३ ई० में अफगानिस्तान में ब्रिटिश सेनाओं की हार हुई थी और उसका बदला लेने के लिए जनरल नॉट गजनी में महमूद के मकबरे में लगे फाटकों को भारत ले आया था, ताकि उन्हें सोमनाथ मन्दिर के (महमूद द्वारा लूटे गये) दरवाजे बताकर हिन्दुओं की सहानुभूति बटोरी जा सके और हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष को बढ़ाया जा सके। सम्भव है अंग्रेज इसमें कुछ सफल भी हुए हों। लार्ड एलेनबारो इस मत का मुख्य प्रचारक था, पर बाद में भेद खुला कि ये फाटक सोमनाथ मन्दिर के नहीं हैं, तो उन्हें आगरा के किले के गोदाम में पटक दिया गया।

पर इतने से ही महमूद के आक्रमण की घटना काल्पनिक नहीं हो सकती। महर्षि दयानन्द जैसा नीरक्षीर विवेकी व्यक्तित्व अंग्रेजों के कहने मात्र से किसी बात को मानने वाला नहीं था। अंग्रेजों ने तो आर्यों के भी विदेशी आक्रमणकारी होने का दुष्प्रचार किया था। महर्षि दयानन्द ही पहला व्यक्तित्व था, जिसने उसी समय अपनी पुस्तकों व भाषणों में इस झूठ का खण्डन किया था जबकि कम्यूनिस्ट आज भी उस झूठ का प्रचार कर हरे हैं। अंग्रेजों के षड्यंत्र तो दोनों ही थे।

यद्यपि सोमनाथ में शिवलिंग की जगह इस्लाम पूर्व देवी मनात की प्रतिमा तोड़ी गई मानने से लूट का उद्देश्य नहीं बदल जाएगा, इससे प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर का स्तर अवश्य गिर गया, जो उसने तत्कालीन इतिहासकार अलबिरूनी के प्रमाण कि महमूद ने शिवलिंग तोड़कर उसके टुकड़े गजनी में मस्जिद की सीढ़ियों में लगवाए, की उपेक्षा कर नवीन कल्पना कर ली। सम्भव है यह भी किसी की कल्पना हो कि सोमनाथ मन्दिर की समिति ने मन्दिर के इलाके के अन्दर ही मुसलमानों के लिए एक मस्जिद बनाने की सम्मति दी थी। बाद में बनी मस्जिद को देखकर कल्पना की होगी।

सोचिये, जो हिन्दू मुसलमानों का हाथ लगे हुए अपने परिजन को भी परिवार में नहीं रखते थे, वे मन्दिर में ही मस्जिद बनाने की सम्मति कैसे दे देते? वैसे तो इतिहासकार रोमिला थापर बहुत बुद्धिमती है, पर २००४ ई० में सोमनाथ मन्दिर के ध्वंस पर 'सोमनाथ-मैनी वॉयसेज ऑफ हिस्ट्री' पुस्तक लेखन के कारण

शेष पृष्ठ १८ पर

नास्तिकता भी एक अन्ध विश्वास है।

(डॉ० विवेक आर्य, दिल्ली, मो0:-०८०७६९८५५९७)

फिलीपीन्स के राष्ट्रपति श्री रोड्रिगो दुतर्ते ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने की चुनौती दी है। उन्होंने कहा है कि यदि कोई ईश्वर के अस्तित्व को साबित कर दे तो वह अपने पद से इस्तीफा दे देंगे। रिपोर्ट के मुताबिक, इससे पहले राष्ट्रपति रोड्रिगो ने ईश्वर को स्टूपिड (मूर्ख) तक कह डाला था। राष्ट्रपति के नए बयान से रोमन कैथोलिक आस्था वाले देश में नया विवाद शुरू हो गया है। उन्होंने दक्षिण दावाओं शहर में एक कार्यक्रम के दौरान कहा- 'वहाँ ईश्वर का तर्क कहां हैं?' उन्होंने कहा कि अगर कोई एक भी गवाह मिल जाए जो किसी फोटो अथवा सेल्फी से यह साबित कर सके कि कोई इंसान भगवान से मिल चुका है या भगवान को देख चुका है तो वह तुरंत इस्तीफा दे देंगे।

इस विषय पर आर्यसमाज का तर्क न केवल आस्तिकवाद को सिद्ध करना है, अपितु ईश्वर की सत्य परिभाषा जो वेदों के आधार पर आधारित है, उसका प्रतिपादन भी करता है। इस लेख के माध्यम से हम सत्य को जानने का प्रयास करेंगे कि क्या धर्म को मानने वाले आस्तिकों का उद्देश्य ठीक है अथवा तर्क के द्वारा धर्म को न मानने वाले नास्तिकों का उद्देश्य ठीक है। नास्तिक बनने के मुख्य क्या क्या कारण हैं?

नास्तिक बनने के प्रमुख कारण हैं -

१. ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव से अनभिज्ञता।

२. धर्म के नाम पर अन्धविश्वास जिनका मूल मत मतान्तर की संकीर्ण सोच है।

३. विज्ञान द्वारा की गई कुछ भौतिक प्रगति को देख अभिमान होना।

४. धर्म के नाम पर दंगे, युद्ध, उपद्रव आदि।

ईश्वर के नाम पर अत्याचार, अज्ञानता को बढ़ावा देना, चमत्कार आदि में विश्वास दिलाना, ईश्वर को एकदेशीय अर्थात् एक स्थान जैसे मंदिर, मस्जिद आदि अथवा चौथे अथवा सातवें आसमान तक सीमित करना, ईश्वर द्वारा अवतार लेकर विभिन्न लीला करना, एक के स्थान पर अनेक ईश्वर होना, निराकार के स्थान पर साकार ईश्वर होना आदि कुछ कारण हैं, जो एक निष्पक्ष व्यक्ति को भी यह सोचने पर मजबूर कर देते हैं कि क्या ईश्वर का अस्तित्व है अथवा ईश्वर मनुष्य के मस्तिष्क की कल्पना मात्र है! उदाहरण के तौर पर हिन्दू समाज में शूद्रों को मन्दिर में प्रवेश की मनाही है। एवं अगर कोई शूद्र मंदिर में प्रवेश कर भी जाये, तो उसे दंड दिया जाता है और मंदिर को पवित्र करने का ढोंग किया जाता है। यह सब पाखंड किया तो ईश्वर के नाम पर जाता है मगर इसके पीछे मूल कारण मनुष्य का स्वार्थ है नाकि ईश्वर का अस्तित्व है।

ईश्वर गुण, कर्म और स्वभाव से दयालु एवं न्यायकारी है। इसलिए वह किसी भी प्राणिमात्र में कोई भेदभाव नहीं करते। ईश्वर गुणों से सर्वव्यापक एवं निराकार है अर्थात् सभी स्थानों पर है और आकार रहित भी है। जब ईश्वर सभी स्थानों पर है, तो फिर उन्हें केवल मंदिर में या क्षीर सागर पर या कैलाश पर या चौथे आसमान पर या सातवें आसमान पर ही क्यों माने। इससे यही सिद्ध होता है कि मनुष्य ने अपनी कल्पना से पहले ईश्वर को निराकार से साकार किया, उन्हें सर्वदेशीय अर्थात् सभी स्थानों पर निवास करने वाला से एकदेशीय अर्थात् एक सथान पर सीमित कर दिया। फिर सीमित कर कुछ मनुष्यों ने अपने आपको ईश्वर का दूत, ईश्वर और आपके बीच मध्यस्थ, ईश्वर तक आपकी बात पहुँचाने वाला बना डाला। यह जितना भी

प्रपंच ईश्वर के नाम पर रचा गया यह इसीलिए हुआ क्यूंकि हम ईश्वर के निराकार गुण से परिचित नहीं हैं। अपनी अंतरात्मा के भीतर निराकार एवं सर्वव्यापक ईश्वर को मानने से न मंदिर की, न मूर्ति की, न मध्यस्थ की, न दूत की, न अवतार की, न पैगम्बर की और न ही किसी मसीहा की आवश्यकता है।

ईश्वर के नाम पर सबसे अधिक भ्रातियाँ मध्यस्थ बनने वाले लोगों ने फैलाई हैं। चाहे वह छुआछूत का समर्थन करने वाले एवं शूद्रों को मंदिरों में प्रवेश न देने वाले हिन्दूधर्म के पुजारी हों,चाहे इस्लाम से सम्बन्ध रखने वाले मौलवी-मौलाना हों, जिनके उकसाने के कारण इतिहास में मुस्लिम हमलावरों ने मानवजाति पर धर्म के नाम पर ऐसा कोई भी अत्याचार नहीं था, जो उन्होंने नहीं किया था, चाहे ईसाई समाज से संम्बंधित पोप आदि हों, जिन्होंने चर्च के नाम पर हजारों लोगों को जिन्दा जला दिया एवं निरीह जनता पर अनेक अत्याचार किये। न यह मध्यस्थ होते, न ईश्वर के नाम पर इतने अत्याचार होते और न ही इस अत्याचार के फलस्वरूप प्रतिक्रिया रूप में विश्व के एक बड़े समूह को ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार कर नास्तिकता का समर्थन करना पड़ता। सत्य यह है कि यह प्रतिक्रिया इस व्याधि का समाधान नहीं थी, अपितु इसने रोग को और अधिक बढ़ा दिया। आस्तिक व्यक्ति यथार्थ में ईश्वरविश्वासी होने से पापकर्म में लीन होने से बचता था। दोष मध्यस्थों का था, जो आस्तिकों का गलत मार्गदर्शन करते थे। मगर ईश्वर को त्याग देने से पाप-पुण्य का भेद मिट गया और पार्पकर्म अधिक बढ़ता गया, नैतिक मूल्यों को ताक पर रख दिया गया एवं इससे विश्व अशांति और अराजकता का घर बन गया।

ईश्वर में अविश्वास का एक बड़ा कारण अन्धविश्वास है। सामान्यजन विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों में लिप्त है और उन अंधविश्वासों का नास्तिक लोग कारण ईश्वर को बताते हैं। सत्य यह है कि ईश्वर ज्ञान के प्रदाता है। अज्ञान को बढ़ावा देने का मुख्य कारण मनुष्य का स्वार्थ है। अपनी आजीविका, अपनी पदवी, अपने नाम को सिद्ध करने के लिए अनेक धर्मगुरु अपने-अपने ढंग से अपनी-अपनी दुकान चलाते हैं। कोई झाड़-फूंक से, कोई गुरुमंत्र से, कोई गुरु के नामस्मरण से, कोई गुरु की आरती से, कोई गुरु की समाधि आदि से जीवन के सभी दुःखों का दूर होना बताता है, कोई गंडा-तावीज़ पहनने से आवश्यकताओं की पूर्ति बताता है। कुछ लोग और आगे बढ़कर अंधे हो जाते हैं और कोई- कोई निस्संतान संतानप्राप्ति के लिए पड़ोसी के बच्चे की नरबलि देने तक से नहीं चूकता है। विडंबना यह है कि इन मूर्खों के क्रियाकलापों को दिखा-दिखा कर अपने आपको तर्कशील कहने वाले लोग नासितकता को बढ़ावा देते हैं। कोई भी अन्धविश्वास वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध नहीं हो सकता इसलिए नास्तिकता को प्रोत्साहन देने वालों द्वारा विज्ञान का सहारा लेकर नास्तिकता का प्रचार करना भी एक प्रकार से अन्धविश्वास को मिटाने के स्थान पर एक और अन्धविश्वास को बढ़ावा देना ही है।

चमत्कार में विश्वास अन्धविश्वास की उत्पत्ति का मूल है। आस्तिक समाज में मुसलमान पैगम्बरों की चमत्कार की कहानियों में अधिक विश्वास रखते हैं, ईसाई समाज में ईसामसीह और संतों के नाम पर चमत्कार की दुकानें चलाई जाती हैं। हिन्दू समाज में चमत्कार पुराणों में लिखी देवी-देवताओं की कहानियों से लेकर गुरुडम की दुकानों तक फल-फूल रहा है। इन सभी का यह मानना है कि ईश्वर सब कुछ कर सकता है। महर्षि दयानंद सत्यार्थ प्रकाश में इस दावे की परीक्षा करते हुए लिखते हैं कि अगर ईश्वर सब कुछ कर सकता है, तो क्या ईश्वर अपने आपको मार भी सकता है। क्या ईश्वर अपने जैसा एक और ईश्वर बना सकता है, जिसके गुण-कर्म और स्वभाव उसी के समान हों। इसका उत्तर स्पष्ट है- नहीं। फिर सब कुछ कैसे कर सकता है? इस शंका का समाधान यह है कि जो-जो कार्य ईश्वर के हैं- जैसेकि सृष्टि की उत्पत्ति, पालन-पोषण,

प्रलय, मनुष्य आदि का जन्म-मरण, पाप-पुण्य का फल देना आदि में ईश्वर स्वयं सक्षम है। उन्हें किसी की आवश्यकता नहीं है। नास्तिक लोग आस्तिकों के चमत्कार के दावे की परीक्षा लेते हुए कहते हैं कि सृष्टि को अनियमित मानते हो, तो उसे बनाने वाले ईश्वर को भी अनियमित मानना पड़ेगा जो कि असंभव है। इसलिए चमत्कार को मनुष्य के मन की स्वार्थवश कल्पना मानना सत्य को मानने के समान है। न इससे ईश्वर का नियमित होने का खंडन होगा और न ही अन्धविश्वास को बढ़ावा मिलेगा।

नास्तिकता को बढ़ावा देने में एक बड़ा दोष अभिमान का भी है। भौतिक जगत में मनुष्य ने जितनी भी वैज्ञानिक उन्नति की है, उस पर वह अभिमान करने लगता है और इस अभिमान के कारण अपने आपको जगत के सबसे बड़ी सत्ता समझने लगता है। एक उदाहरण लीजिये। सभी यह मानते हैं कि न्यूटन ने Gravitation अथवा गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत की खोज की थी। क्या न्यूटन से पहले गुरुत्वाकर्षण की शक्ति नहीं थी? थी मगर मनुष्य को उसका ज्ञान नहीं था। अर्थात् न्यूटन ने केवल अपनी अल्पज्ञता को दूर किया था और इसी क्रिया को अविष्कार कहा जाता है। सत्य यह है कि जितनी भी भौतिक वैज्ञानिक उन्नति है, वह अपनी अल्पज्ञता को दूर करना है। मनुष्य चाहे कितनी भी उन्नति क्यों न कर ले, वह ज्ञान की सीमा को कभी प्राप्त नहीं कर सकता क्यूंकि एक तो मनुष्य की शक्तियाँ सीमित हैं, जबकि ज्ञान की असीमित हैं। दूसरी बात असीमित ज्ञान का ज्ञाता केवल एक ही है और वो है- ईश्वर, जिसमें न केवल वो ज्ञान भी पूर्ण है, जो केवल मानव के लिए है, अपितु वह ज्ञान भी है, जो मानव से परे केवल ईश्वर के लिए है।

स्वयं न्यूटन की इस सन्दर्भ में धारणा कितनी प्रासंगिक है-

'I do not known what I may appear to the world, but to myself I seem to have been only like a boy playing on the seashore, and diverting myself in now and then finding a smoother pebble or a prettier shell than ordinary, whilst the great ocean of truth lay all undiscovered before me.'

न्यूटन ने हमारी अवधारणा का समर्थन कर अपनी निष्पक्षता का परिचय दिया है।

अब प्रश्न यह है कि धर्म और विज्ञान में क्या सम्बन्ध है क्यूंकि नास्तिक लोगों का यह मत है कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे के शत्रु हैं। नास्तिक लोगों की इस सोच का मुख्य कारण यूरोप के इतिहास में चर्च द्वारा बाइबिल की मान्यताओं पर वैज्ञानिकों द्वारा शंका करना और उनकी आवाज को सख्ती से दबा देना था। उदाहरण के लिए गैलिलियो को इसलिए मार डाला गया क्यूंकि उसने कहा था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है, जबकि चर्च की मान्यता इसके विपरीत थी। चर्च ने वैज्ञानिकों का विरोध आरम्भ कर दिया और उन्हें सत्य का त्याग कर जो बाइबिल में लिखा था, उसे मानने को मजबूर किया और न मानने वालों को दण्डित किया गया। इस विरोध का यह परिणाम निकला कि यूरोप से निकलने वाले वैज्ञानिक चर्च को अर्थात् धर्म को विज्ञान का शत्रु मानने लग गए और उन्होंने ईश्वर की सत्ता को नकार दिया। दोष चर्च के अधिकारियों का था, नाम ईश्वर का लगाया गया। यह विचार परम्परा रूप में चलता आ रहा है और इस कारण से वैज्ञानिक अपने आपको नास्तिक कहते हैं।

धर्म और विज्ञान में क्या सम्बन्ध है? इसका उत्तर है कि ''Religion and Science are not against each other but they are allies to each other'' अर्थात् धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु सहयोगी है। जैसे विज्ञान यह बताता है कि जगत कैसे बना है, जबकि धर्म यह बताता है कि जगत क्यूँ बना है। मनुष्य का जन्म कैसे हुआ, यह विज्ञान बताता है

जबकि मनुष्य का जन्म क्यूँ हुआ, यह धर्म बताता है।

भौतिक विज्ञान के लिए आध्यात्मिक शंकाओं का करना असंभव है, इनका समाधान धर्म द्वारा ही संभव है। धर्म और विज्ञान दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं और इसी तथ्य को आइंस्टीन ने सुन्दर शब्दों में इस प्रकार से कहा है-

''Science without religion is a lame and religion without science is blind.''

विज्ञान धर्म के मार्गदर्शन के बिना अधूरा है और सत्य धर्म विज्ञान के अनुकूल है, अन्धविश्वास अवैज्ञानिक होने के कारण त्याग करने योग्य है।

एक कुतर्क यह भी दिया जाता है कि अगर ईश्वर है, तो उन्हें वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध करके दिखाएं। इसका समाधानये है कि वायु के अतिरिक्त मन, बुद्धि, सुख, दुःख, गर्मी, सर्दी, काल, दिशा, आकाश ये सभी निराकार हैं। क्या ये सभी वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध होते हैं? नहीं। परन्तु फिर भी इनका अस्तित्व माना जाता है। फिर केवल ईश्वर को लेकर यह शंका उठाना नास्तिकता का समर्थन करने वालों की निष्पक्षता पर प्रश्न उठाता है। सत्य यह है कि वैज्ञानिक प्रयोगों से ईश्वर की सत्ता को सिद्ध न कर पाना आधुनिक विज्ञान की कमी है, जबकि आध्यात्मिक वैज्ञानिक जिन्हें हम ऋषि कहते हैं, चिरकाल से निराकार ईश्वर को न केवल अपनी अन्तरात्मा में अनुभव करते आ रहे हैं, अपितु उसे जगत के कण-कण में भी विद्यमान पाते हैं।

दंगे, युद्ध, उपद्रव आदि का दोष ईश्वर को देना एक और मूर्खता है। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि दंगे, उपद्रव आदि मज़हब या मत-मतान्तर आदि को मानने वालों के स्वार्थ के कारण होते हैं ना कि धर्म के कारण होते हैं। एक उदाहरण लीजिये। १९४७ से पहले हमारे देश में अनेक दंगे हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में हुए थे। इन दंगों का मुख्य कारण यह बताया जाता था कि हिन्दुओं के धार्मिक जुलूस के मस्जिद के सामने से निकलने से मुसलमानों की नमाज़ में विघ्न पड़ गया, जिसके कारण यह दंगे हुए। मेरा स्पष्ट मानना है कि जो व्यक्ति ईश्वर की उपासना या नमाज़ में लीन होगा, उसके सामने चाहे बारात भी क्यों न निकल जाये। उसे मालूम ही नही चलेगा परन्तु जब व्यक्ति यह बाट देख रहा हो कि कब हिन्दुओं का जुलूस आये, कब हम नमाज़ आरम्भ करें और कब दंगा हो, तो इसका दोष ईश्वर को देना कहाँ तक उचित है? संसार में जितनी भी हिंसा ईश्वर के नाम पर होती है, उसका मूल कारण स्वार्थ है नाकि धर्म है।

नास्तिक लोग धर्म की मूलभूत परिभाषा से अनभिज्ञ हैं और मत-मतान्तर की संकीर्ण सोच एवं अन्धविश्वास को धर्म समझकर उसको तिलांजलि दे देते हैं। धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है, जोकि धारण करने वाली धृ धातु से बना है। **"धार्यते इति धर्मः"** अर्थात् जो धारण किया जाये, वह धर्म है। अथवा लोक- परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु सार्वजनिक पवित्र गुणों और कर्मों का धारण व सेवन करना धर्म है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि मनुष्य जीवन को उच्च व पवित्र बनाने वाली ज्ञानानुकूल जो शुद्ध सार्वजनिक मर्यादा पद्धति है, वह धर्म है। धैर्य, क्षमा, मन को प्राकृतिक प्रलोभनों में फँसने से रोकना, चोरी का त्याग, शौच अर्थात् पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह अर्थात् उन्हें वश में करना, बुद्धि अथवा ज्ञान, विद्या, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण हैं। सदाचार परम धर्म है।

अन्धविश्वास मत मतान्तर की संकीर्ण सोच है। उसे धर्म समझना अन्धविश्वास है। धर्म का आचरण से सम्बन्ध है। मत का सम्बन्ध आचरण से नहीं, अपितु मान्यता से है। मान्यता सही भी हो सकती है गलत भी हो सकती है। इसलिये मत को धर्म समझना गलत है।

ईश्वर में विश्वास रखने के निम्नलिखित लाभ हैं-

१. आदर्श शक्ति में विश्वास से जीवन में दिशा-

निर्धारण होता है।

२. सर्वव्यापक एवं निराकार ईश्वर में विश्वास से पापों से मुक्ति मिलती है।

३. ज्ञान के उत्पत्तिकर्ता में विश्वास से ज्ञान प्राप्ति का संकल्प बना रहता है।

४. सृष्टि के रचनाकर्ता में विश्वास से ईश्वर की रचना से प्रेम बढ़ता है।

५. अभयता, आत्मबल में वृद्धि, सत्य पथ का अनुगामी बनना, मृत्यु के भय से मुक्ति, परमानन्द सुख की प्राप्ति, आध्यात्मिक उन्नति, आत्मिक शांति की प्राप्ति, सदाचारी जीवन आदि गुण की आस्तिकता से प्राप्ति होती है।

६. स्वार्थ, पापकर्म अत्याचार, दुःख, राग, द्वेष, ईर्ष्या अहंकार आदि दुर्गुणों से मुक्ति मिलती है।

तार्किक होना गलत नहीं है। ऋषि दयानंद १९वीं सदी के सबसे बड़े तार्किक थे मगर वह पूर्णरूप से आस्तिक थे। दर्शनों में तर्क को ऋषि कहा गया है। बशर्ते तर्क का प्रयोजन सत्य को ग्रहण करना और असत्य का त्याग हो। तर्क का नाम लेकर धर्म का बहिष्कार कर भोगवादी होने के बहाने बनाना अपने आपको अँधेरे में रखने के समान है। **नास्तिकता अपने आप में अन्धविश्वास है।** अगर किसी व्यक्ति के पैर में फोड़ा निकला हो, तो उसका इलाज करना चाहिये ना कि पैर काट देना चाहिये। नास्तिकता इसी प्रकार का पाखण्ड है। धर्म के नाम पर किये जाने वाले पाखंड को देखकर पाखंड के त्याग के स्थान पर धर्म का बहिष्कार करना नास्तिकता रूपी अन्धविश्वास है।

❑❑

पृष्ठ १३ का शेष

विवादित हैं और एक साक्षात्कार में नोबेल पुरस्कार विजेता श्री वी०एस० नामपाल ने उन्हें "फ्रॉड" तक कह दिया था। अतः उनके प्रत्येक वाक्य को प्रमाण नहीं माना जा सकता।

इञ्जीनियर इतिहासकार आगे कहते हैं कि हिन्दू देवताओं की मूर्ति तोड़ने के लिए महमूद ने सोमनाथ पर हमला नहीं किया था। उसका मूल मकसद मन्दिर की विशाल धन सम्पदा को लूटना था। इस लूट के बाद जब महमूद वहाँ से चला तो इस मन्दिर की जिम्मेदारी ... (हारने वाले) राजा के भाइयों के हाथों में सौंप दी। वह यह फैसला भी देकर गया कि तत्काल वहाँ फिर मन्दिर बनाया जाए।"

समीक्षा- तो क्या महमूद सोमनाथ की मूर्ति को गजनी में पूजा करन के लिए ले गया था? अल बिरूनी साफ लिखता है कि पत्थर की वह मूर्ति मस्जिद की सीढ़ियों में पैर पोंछने के लिए लगा दी गई थी। जब मन्दिर बनवाने की बात कही है, तो स्पष्ट है कि मन्दिर तोड़ा गया था। जब मन्दिर बनवाना ही था, तो महमूद ने तोड़ा क्यों था? और तोड़ दिया, तो बनवाने के लिए क्यों कहा? ताकि उस पर फिर से चढ़ावा आये और वह लूट कर ले जाए? कैसी भोली बातें कर रहे हैं इतिहासकार इञ्जीनियर कि महमूद चलने लगा, तो हिन्दुओं के हाथों में ही मन्दिर की जिम्मेदारी सौंप गया। और क्या मुसलमान सम्भालते? जब लुटेरा मन्दिर लूटकर चला ही गया, तो बाद में तो उसे हिन्दू ही सम्भालेंगे। और भारत में मन्दिर सम्भालने कोई महमूद का बाप बैठा था? दुर्जनतोष न्याय से यदि मान भी लें कि महमूद ने मन्दिर पुनः बनाने के लिए कहा था,तो क्या इतने से ही महमूद उदार हो गया? इतिहासकार बतायें कि उसके बनाने के लिए महमूद ने कितनी राशि दी थी? ओहो! इतनी बड़ी सभा में एक इतिहासकार कैसी गप्पें सुना गया और 'अभियान' ने इसे छाप भी दिया। कभी कहते कि मुस्लिमों ने मन्दिर नहीं तोड़े, फिर कहा कि धन के लिए तोड़े, पुनः बोले कि फिर से बनवाने के लिए तोड़े!

(क्रमशः)

❑❑

देश मानसिक दिवालियेपन की ओर

(आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक,वेदविज्ञान मन्दिर भीनमाल-राज0,मो0:-०९४१४१८२१७३)

इस समय देश के सर्वोच्च न्यायालय में इस बात पर बहस चल रही है कि समलैंगिक सम्बन्धों को अपराध की श्रेणी में माना जाए अथवा इस श्रेणी से बाहर निकाल कर ऐसे दुराचारी लोगों को स्वच्छन्दता प्रदान की जाए? जब मैं प्राचीन काल में विश्वगुरु एवं चक्रवर्ती राष्ट्र रहे, अपने इस राष्ट्र के अतीत को स्मरण करता हूँ, तो आज अपना वह आर्यावर्त (भारत) कहीं दिखाई नहीं देता।

इस अपने भारत के विषय में जानने हेतु मैं एक ही उदाहरण प्रस्तुत करना पर्याप्त समझता हूँ-

अयोध्यानरेश महाराजा दशरथ के राज्य में नागरिकों के विषय में महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है-

"नाल्पसंनिचयः
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान् न च नास्तिकः।।
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः।।
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्ते न संकरः"।।
(वा० रामा० बाल० ६/८, ९)

अर्थात् अयोध्या राज्य में सभी नागरिक अति समृद्ध थे। कोई महिला वा पुरुष न तो कामी था, न कंजूस, न क्रूर था। कोई ऐसा नागरिक नहीं था, जो सभी प्रकार के ज्ञान विज्ञान में पारंगत न हो, कोई नास्तिक नहीं था। सभी नर-नारी धर्मपरायण, जितेन्द्रिय, प्रसन्न, शील व सदाचार की दृष्टि से ऋषियों के समान पवित्र थे। सभी नित्य यज्ञ, ईश्वरोपासना व परोपकार करने वाले, अतिथियों व मूक प्राणियों का पोषण करने वाले थे। कोई भी संकुचित दृष्टिवाला, चोर तथा सदाचारशून्य व वर्णसंकर अर्थात् अपने वर्ण के अनुकूल योग्यता व आचरण से भ्रष्ट नहीं था।

इन्हीं के पुत्र मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का राज्य तो विश्वविख्यात है। उनके राज्य में ये सभी गुण तो सभी नागरिकों में थे ही, इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताएं भी महर्षि वाल्मीकि ने दर्शायी हैं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं-

"न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति।।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणिकुर्वते।।
नित्यमूला नित्यफलस्तरवस्तत्र पुष्पिताः।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः"।।

अर्थात् श्रीराम के राज्य में कोई स्त्री विधवा नहीं होती थी, न विषैले जन्तुओं का भय था, न रोग का, भय किसी को होता था। अल्पायु में किसी की मृत्यु नहीं होती थी, वृक्ष दीर्घायु तक फल व फूलों से युक्त रहत थे, इच्छानुसार वर्षा होती थी तथा वायु सुखद ही होकर बहती थी अर्थात् कहीं कोई प्राकृतिक प्रकोप भी नहीं होता था।

इस राष्ट्र एवं विश्व के नदीतटों, पर्वत शिखरों व गुफाओं में महान् तपोधन महर्षि लोग तप-साधना करते थे, प्रत्येक परिवार में वेदध्वनि गूँजती व यज्ञों की सुगन्ध सबको आनन्दित करती थी। सभी कर्मानुसार निर्धारित सभी वर्ण परस्पर सदाचार व प्रेमपूर्वक रहते थे। राष्ट्र विश्व में सर्वाधिक शक्तिशाली परन्तु सभी राष्ट्रों का संरक्षक, विश्वगुरु, सर्वाधिक समृद्ध एवं सदाचार में शीर्ष था। महाभारत में काफी पतन होते हुए भी वर्तमान की अपेक्षा सैकड़ों गुना श्रेष्ठ, समृद्ध, बलवान् ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न था।

इस राष्ट्र एवं इस भरतखण्ड में भगवत्पाद महर्षिगणों व देवों में ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, इन्द्र, नारद, बृहस्पति, सनत्कुमार, मनु, भृगु, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, अगस्त्य, भरद्वाज, परशुराम, याज्ञवल्क्य, ऐतरेय, महीदास, मार्कण्डेय, वेदव्यास, कपिल, कणाद, पतंजलि, यास्क, जैमिनि, गौतम, पाणिनि, दयानन्द जैसे अनेक महामानवों ने जन्म लिया, वहीं मरीचि, इक्ष्वाकु मान्धाता, पृथु, हरिश्चन्द्र, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, हनुमान्, दुष्यन्त पुत्र भरत, अर्जुन चन्द्रगुप्त, चाणक्य, समुद्रगुप्त, शिवा, प्रताप आदि अनेकों राजपुरुषों अथवा राष्ट्र निर्माताओं ने जन्म लिया। इस देश में भगवती उमा, उर्मिला, सावित्री, अनसूया, लोपामुद्रा, गार्गी, अपाला, घोषा, रुक्मिणी, जीजाबाई, पद्मिनी, दुर्गावती, पन्नाधाय, लक्ष्मीबाई जैसी पूज्या नारियों ने जन्म लिया। इन सबके चरित्र कितने पवित्र और उच्च थे, इसकी कल्पना भी आज का घमंडी एवं पाश्चात्य का बौद्धिक दास नहीं कर सकता है। इनके ज्ञान-विज्ञान का स्तर भी आज कल्पना की सीमा से बाहर है।

मेरे देशवासियो! सौभाग्य से हम ऐसे महान् देश में जन्मे परन्तु आज वही देश सर्वत्र दुराचार, लम्पटता, भ्रष्टाचार, चोरी, आगजनी, रिश्वतखोरी, मिथ्यापन, छल-कपट, ईर्ष्या, वैर, द्वेष, क्रूरता, हिंसा, निर्धनता, अज्ञान, अन्याय, प्राकृतिक प्रकोप, नशावृत्ति, वैश्यावृत्ति आदि अनेक अकथनीय पापों के सागर में डूबा है। कभी यहाँ के सन्त पूर्ण जितेन्द्रिय व अपरिग्रही अर्थात् धन संग्रह की वृत्ति से सर्वथा दूर रहने वाले महाविद्वान् होते थे, वहीं आज के सन्त महिलाओं के साथ रंगरेलियाँ मनाते, उन्हें शिष्याएं बनाते व खरबोंपति बन रहे हैं। दुराचार में लिप्त हो रहे हैं, कई जेलों में बन्द हैं, तब नेताओं, कथित प्रबुद्धों व सामाजिक कार्यकर्त्ताओं वास्तव में स्वाभिमान व राष्ट्रप्रेम की दृष्टि से दीन-दरिद्र व बौद्धिक दृष्टि से विदेशों के दासों, कथित मानवा- धिकारियों व कामलिप्सा में प्रतिक्षण डूबी युवा पीढ़ी को क्या कहें? **जब अनेक कथित साधु, ब्रह्मचारी, संन्यासी भी भ्रष्ट हो रहे हैं, तब कुछ लोगों को समलैंगिकता की निर्लज्ज माँग करने पर किसे आश्चर्य होगा? वस्तुतः मेरा भारत कहीं खो चुका है और मैकाले का इण्डिया निर्मम अट्टहास कर रहा है। मुझे लगता है कि आज सच्चे भारतीय कम ही बचे हैं, यदि सच्चे भारतीय अधिक संख्या में यहाँ होते, तो समलैंगिकता के पाप को वैधानिक मान्यता दिलाने की माँग के विरुद्ध देश में आन्दोलन कर रहे होते।** परन्तु मैं देख रहा हूँ कि प्रायः सभी शान्त हैं। अनेक लोग मन से इसके पक्ष में होंगे और बाहर से दिखाने के लिए इस पाप का विरोध करेंगे। कुछ सज्जन हैं, तो वे निष्क्रिय व निराश होकर अपने घर बैठे हैं। सम्भवतः यह बात केन्द्र सरकार भी जानती है, इस कारण उसने भी धृतराष्ट्र बनने में ही अपनी शान समझ ली अथवा स्वयं को विवश मान कर सब कुछ न्यायालय पर छोड़ दिया।

आज मीडिया में अनेक व्यक्ति इस कुकर्म के पक्षधर नाना प्रकार के मिथ्या तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं, **वे ऐसे महानुभाव इस इण्डिया में बड़े व्यक्ति माने जाते हैं।** मैं ऐसे दीनहीन बौद्धिक दासों के सभी मिथ्या तर्कों की परीक्षा करता हूँ-

१. **यौन सम्बन्धों की स्वतंत्रता मानवाधिकार है।**

समीक्षा- मैं सर्वप्रथम तो यह पूछता हूँ कि मानवाधिकार किसे कहते हैं? अपराधी का मुख ढक कर रखो, जिससे उसको समाज में निन्दा का पात्र न बनना पड़े। अपराधी को सार्वजनिक कड़ा दण्ड न दो। इसका अर्थ अपराधी का अधिकार है कि वह अपराध करते हुए भी निन्दा व अपमान का पात्र न बने। यह मानवाधिकार सभी अपराधियों यहाँ तक कि आतकवादियों को भी मानव समझता है, जिनके मान-सम्मान के लिए

सदैव यह चिन्तित रहता है। शायद अपराधियों के अपराध से ग्रस्त सज्जनों को कोई मानव समझता ही नहीं है।

२. समलैंगिकों को समाज में अपमान सहना पड़ता है।

समीक्षा- अपमान तो चोर, डाकू, बलात्कारियों, जुआरियों, हत्यारों को भी सहना पड़ता है और यदि ऐसा नहीं है, तो ऐसे समाज को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है, जहाँ चोर, लुटेरों, बलात्कारियों को सम्मान मिलता हो। वैसे सच्चाई यह है कि आज राष्ट्र में ऐसे ही भ्रष्ट व दुराचारी लोग ही अपने धनबल, बाहुबल, जनबल व राजनैतिक बल के आधार पर प्रतिष्ठा पाते हैं। इस कारण इनके अधिकारों का मानवाधिकारवादियों को उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी कि समलैंगिकों की। जिस दिन इन लोगों के साथ समाज में भेदभाव हो जायेगा, उस दिन न्यायालय में चोरी, बलात्कार, डकैती, जुआ व हत्या को भी अपराधमुक्त करने की माँग अवश्य उठेगी।

३. समलैंगिकता पारस्परिक सहमति पर आधारित हो, तभी वह अपराध की श्रेणी में नहीं आयेगी, जैसे कि वर्तमान में 'लिव इन रिलेशन' कोई अपराध नहीं है, जबकि बिना इच्छा के दोनों ही अपराध हैं।

समीक्षा- दुर्भाग्य से **'लिव इन रिलेशन'** का पाप पाश्चात्य कुसभ्यता दासों की मानसिकता का परिणाम है। यह दासता आज इण्डिया के कथित बुद्धिजीवियों की पहचान बन गई है। भारत में ऐसे पापों के लिए कोई स्थान नहीं था, बल्कि ऐसे सम्बन्ध बनाने वाले स्त्री-पुरुषों दोनों के लिए सार्वजनिक मृत्युदण्ड का विधान था। जब सर्वोच्च न्यायालय में इस पर बहस चल रही थी, उस समय कोर्ट ने श्रीकृष्ण-राधा का उदाहरण देकर इसे वैध घोषित किया था। उस समय **'राधारमण हर गोविन्द जय'** पर झूमने वाले रसिक कथावाचकों की बोलती बन्द थी। वे अपनी पत्नी, पुत्र वा माता को ऐसे सम्बंधों की अनुमति नहीं दे सकते और न देनी चाहिए परन्तु राधा नाम आते ही उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। तो कोई **'समरथ को नहिं दोष'** कहकर पल्ला झाड़ देता है। परन्तु कोई भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण के निम्नलिखित कथन पर विचार नहीं करता-

'यद्यदाचरति श्रेष्ठतर तत्तदेवेतरोजनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकास्तनुवर्तते'।।

अर्थात् समाज श्रेष्ठ लोगों के आचरण का अनुसरण करता है। मैं राधा-कृष्ण का सम्बंध बताने वालों से स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि प्रचलित पुराणों की पापकथाओं के कारण ही आज कोर्ट ऐसे पापों को मान्यता दे रहा है। **'लिव इन रिलेशन'** ब्रह्मवैवर्त पुराण के पाप का परिणाम है।

जहाँ तक पारस्परिक सहमति का प्रश्न है, तब **दो व्यक्ति व स्त्री-पुरुष पारस्परिक सहमत होकर नगर के चौराहों पर यौन क्रीड़ा करने की अनुमति माँगें, तो क्या स्वतंत्रता के पक्षधर उनकी माँग को वैध बताएंगे? क्या एक दुःखी व्यक्ति दूसरे से अपनी हत्या कराने का आग्रह करे, तो क्या उसे ऐसा करने की अनुमति वैध होगी? यदि नहीं, तो क्यों? ये भी दोनों सहमत हैं। जूआ सभी परस्पर सहमत होकर ही खेलते हैं, तब उन्हें उसकी स्वतंत्रता क्यों नहीं? रिश्वत का लेन-देन भी परस्पर सहमति से होता है, तब वह अपराध क्यों? अनेक प्रकार के नशे अपराध की श्रेणी में क्यों हैं? उन्हें नशा करने आनन्द मनाने की छूट क्यों नहीं?** नशीले पदार्थों की तस्करी बेचने व खरीदने दोनों की पारस्परिक सहमति से होती है, तब यह अपराध क्यों?

४. **कुछ महाशय समलैंगिकता को शिखण्डी से जोड़ रहे हैं।**

समीक्षा- मैं नहीं समझता कि इन कथित प्रबुद्धों ने महाभारत ग्रन्थ को ध्यान से पढ़ा भी होगा? शिखण्डी एक महारथी योद्धा था। उसके विषय में भीष्म पितामह ने केवल इतना कहा है कि वह पूर्व में स्त्री था, इससे संकेत मिलता है कि वह या तो पूर्व जन्म में स्त्री था अथवा इसने लिंगपरिवर्तन कराया था। इन दोनों ही बातों से उसका समलैंगिकता से क्या सम्बंध? ऐसे कुतर्की लोगों की मानसिकता को धिक्कार है। सम्पूर्ण महाभारत में ऐसा कहीं संकेत नहीं है। हां, भावगत, ब्रह्मवैवर्त पुराणादि में अनेक पापों की कथा अवश्य है। **दुर्भाग्य से हिन्दू समाज इन ग्रन्थों को ही सीने से चिपकाये है। वेद उपनिषद् दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थों, शुद्ध मनुस्मृति, शुद्ध महाभारत, शुद्ध रामायण, सत्यार्थ प्रकाश व ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका जैसे ग्रन्थों से उसे कोई लगाव नहीं है।** मेरा सभी हिन्दू धर्माचार्यों से विनम्र अनुरोध है कि वे इन प्रचलित पुराणों, जिनमें से कोई भी महर्षि वेदव्यास की रचना नहीं है, का बहिष्कार करके विशुद्ध वेदमत को ही अपनाएं। अपने दुराग्रह छोड़ने का समय आ गया है। मैं समस्त हिन्दू समाज को सचेत कर रहा हूँ कि इन ग्रन्थों का सन्दर्भ देकर भविष्य में अनेक पापों को वैधता प्रदान करने का प्रयास किया जायेगा। जैसे- चोरी, जुआ, पुत्री के साथ पिता का यौन सम्बंध, पशु का मनुष्य से यौन सम्बंध, गौहत्या व गोमांसभक्षण, नरबलि आदि, तब आप क्या ऐसे ही मौन बने रहेंगे, जैसे आज बैठे हैं और **'लिव इन रिलेशन' का कानून भारतीय संस्कृति व सभ्यता को छलनी कर रहा है और सभी हिन्दू धर्माचार्य, हिन्दूराष्ट्र के उद्घोषक मौन हैं। अरे! कुछ तो बोलो! क्या यही हिन्दू राष्ट्र का विधान होगा?**

५. समलैंगिकता एक प्राचीन परम्परा है, इस कारण इसे अपराध नहीं मानना चाहिये।

समीक्षा- यह पुरानी परम्परा कदापि नहीं है। सम्भव है कि मध्यकाल में विदेशियों के सम्पर्क में आने, उनके शासन में रहने पर ये पाप इस देश के कुछ मूर्ख लोगों ने भी सीख लिए हों। पुरानी परम्परा तो है, ब्रह्मचर्य व संयम की परम्परा, जो कोई अपना सके, तो अपना ले अन्यथा विदेशियों की दासता के नर्क को ही स्वर्ग मानता रहे। फिर भी इसे सैकड़ों वर्ष पुरानी कहें, तो कहूँगा कि चोरी करना भी बहुत पुरानी परम्परा है। **त्रेता में रावण जैसा योद्धा व विद्वान् भी चोरी से सीताजी का हरण कर ले गया, तब क्या इसे भी मान्यता दे दी जाए? राक्षस वर्ग के मनुष्य अन्य मनुष्यों को भी मारकर खा लेते थे, बड़े धर्मात्मा माने जाने वाले राजा भी जूआ खेलते थे, तब क्या चोरी, स्त्रीहरण व जूआ को अपराध न मानें?** परम्परा पुरानी हो वा नवीन, इससे गुण-दोष का ज्ञान नहीं होता, बल्कि वह परम्परा कितनी आदर्श, विज्ञानसम्मत व वेदानुकूल है तथा समूची मानवता ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के व्यापक हित में है? यह विचार करके ही परम्परा को श्रेष्ठ व अनुकरणीय माना जा सकता है। दुर्भाग्य से इन कथित प्रबुद्धों व स्वतंत्रता के पुजारियों को भारत की कोई परम्परा स्मरण नहीं है। उन्हें इस लेख में दर्शाये आदर्शों का अनुकरण करने का साहस अर्जित करने का प्रयास करना चाहिए।

६. समलैंगिकता अप्राकृतिक व अवैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि कुछ पशुओं में भी ऐसा देखा गया है।

समीक्षा- क्या कोई समलैंगिक बताएगा कि उसने कितने पशु- पक्षियों को ऐसा करते देखा है? जिन घरेलू पशुओं को मनुष्य दिन- रात देखता है, क्या उनमें कोई ऐसा दिखता है? यदि कभी किसी रोगी पशु में ऐसा किसी ने देख भी लिया हो, तो वह इन कथित स्वच्छन्दों के लिए आदर्श बन गया। अरे! महाशय! पशु तो बहुत मर्यादित होते हैं। बिना ऋतुकाल के कोई नरपशु-पक्षी मादा के पास जाता भी नहीं। यदि साहस है, तो इनसे

यह सीख लो। फिर यदि आपको उनसे यह न सीख कर गलत ही सीखना है, तो क्या पशुओं की तरह मादाओं के पीछे भागना, उनके लिए नरों का रक्तरंजित संघर्ष, खुले में निर्लज्ज यौन क्रीड़ा, बलवान् द्वारा दुर्बल को मार डालना आदि कर्मों की वैधानिकता को भी सर्वोच्च न्ययालय से माँगेंगे? इस समय सब लूटो, जो भी पाप लूटना है, सबके लिए संघर्ष करो, रैलियाँ करो, धरने-प्रदर्शन करो, क्योंकि अब स्वतंत्र भारत नहीं, बल्कि स्वच्छन्द इण्डिया का लोकतंत्र (भीड़तंत्र) है। और प्रायः सबके सिर पाश्चात्य की दासता रंग दिखा रही है। इस सभी दासों से मैं पूछता हूँ कि शरीर में यौनसम्बंध के लिए जननांगों के अतिरिक्त कौन अन्य अंग विज्ञान के अनुकूल है? शोक है, इन मूर्खों की विषयलम्पटता पर।

७. समलैंगिकता से चोरी छिपे करोड़ों बच्चे व बड़े ग्रस्त ही हैं, फिर क्यों न इसे अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया जाए, जिससे करोड़ों लोग भय व लज्जा का जीवन जीने को बाध्य न हों।

समीक्षा- इस देश में अनेक पाप चोरी छिपे ही होते हैं, यथा- चोरी, रिश्वतखोरी, वस्तुओं में मिलावट, तस्करी, मिथ्या छल-कपट, नरबलि, पशुबलि, कुछ प्रकार के नशे आदि। इन्हें करने वाले भी डरे-सहमे ये कुकृत्य करते हैं। तब इन्हें भी क्यों न अपराध की श्रेणी से मुक्त कर दिया जाए, जिससे इन पापों को करने वाले भी चैन की सांस ले सकें। बोलो, क्या यही न्याय है?

इन सभी कुतर्कों का उत्तर देने के उपरान्त मैं **अपने सभी देशवासियों से जिन्हें इस देश की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता व ज्ञान-विज्ञान से घृणा है तथा जिन्हें विदेशी दासता ही प्रगतिशीलता की परिचायिकता प्रतीत होती है, कहना चाहूँगा कि ऐसा कोई भी कथित प्रबुद्ध, जो स्वयं को बड़ा ज्ञानी, विज्ञानी व सभ्य मानता हो, मेरे पास आकर प्रीतिपूर्वक संवाद करके अपनी व मेरी निःसंकोच परीक्षा कर सकता है। मैं उसका स्वागत करूँगा।** हाँ, उसे अपने सभी अहंकारों व दुराग्रहों को त्याग कर आना होगा। इसके साथ ही यह सचेत करना चाहूँगा कि **यदि समलैंगिकता को अपराध की श्रेण से मुक्त कर दिया, तो देश में विषयलम्पटता की ऐसी आग लगेगी, जो अच्छे बालक-बालिकाओं को भी अपनी लपटों में समेट लेगी। इससे पारिवारिक ढाँचा छिन्न-भिन्न हो जायेगा। जब ये सारे समलैंगिक वृद्ध हो जायेंगे, तब इनकी सेवा कौन करेगा? विदेशों में तो सरकारें वृद्धाश्रम चला लेती हैं, यहाँ तो सड़-सड़ कर रोना और मरना ही होगा। सुशिक्षा व संस्कार भस्म हो जायेंगे। महिलाओं का जीवन और नरक बन जायेगा, नाना रोग फैलेंगे। सम्पूर्ण आकाश व मनस्तत्व में कामुकता की सूक्ष्म तरंगें नाना प्रकार के मानसिक व यौन रोगों को जन्म देंगी।** पारस्परिक सहमति के साथी न मिलने पर यौन अपराध बढ़ेंगे और यह इण्डिया अति निर्लज्ज पशुओं का देश हो जायेगा। जो महानुभाव आधुनिक मनोविज्ञान व पाश्चात्य शरीर विज्ञान के दम्भ में भारतीय ब्रह्मचर्य की शिक्षा पर व्यंग्य करते हैं, उन्हें पहले तो मैं दासता के आवरण से मुक्त होकर स्वतंत्र सोचने का परामर्श दूँगा और यदि वे दासतारूप रोग को ही दवा समझे हों, तब मैं उन्हें प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार द्वारा लिखित एवं विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित **'ब्रह्मचर्य सन्देश'** नामक पुस्तक पढ़ने का परामर्श दूँगा। इसमें विद्वान् लेखक ने विदेशी मानसिकता वालों के लिए अनेक विदेशी डॉक्टरों के महत्वपूर्ण वैज्ञानिक विचार दिए हैं।

यहाँ मैं अपने देश के कथित प्रबुद्ध व्यक्तित्वों से यह निवेदन करना चाहूँगा कि कुछ अनाड़ी व स्वच्छन्द बच्चे समलैंगिकता जैसी मानसिकता के शिकार बन जाएं एवं इसके पक्ष में सार्वजनिक रूप से खड़े दिखाई दें, यह बात तो समझ में आ सकती है, परन्तु जब देश के बड़े-बड़े कानूनविद्, पत्रकार, शिक्षाविद्, समाजशास्त्री,

सर्वोच्च न्यायालय जैसे देश के गौरवपूर्ण न्याय के स्थान पर तथा समाचारपत्रों एवं टी०वी० चैनलों पर इसके समर्थन में खुली और निर्लज्ज बहस करें, तब नैतिकता, सदाचार, संयम, धर्मशीलता आदि सद्गुणों को आश्रय देने वाला इस देश में कौन बचेगा? और जो भी सज्जन अपना मुख खोलेंगे, इस निर्लज्ज वातावरण में उनकी कौन सुनेगा! आज जो इण्डिया के प्रगतिशील माने-जाने वाले महानुभाव समलैंगिकता की माँग करें, उन्हें स्वयं समलैंगिक विवाह करना चाहिए। पति-पत्नी को अपने-अपने समलैंगिक साथी चुनने तथा वर्तमान वैवाहिक सम्बंध तोड़ देने चाहिए। इसके साथ ही अपनी संतान का भी ऐसा ही विवाह कराना चाहिए।

अन्त में स्वतंत्रता के पक्षधरों को आर्यसमाज के संस्थापक, समाज व धर्म के महान् संशोधक, स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक, वेदों के महान् उद्धारक, सम्पूर्ण मानवजाति के सर्वोच्च हितैषी, अखण्ड ब्रह्मचारी एवं महान् योगी महर्षि दयानन्द सरस्वती का सन्देश बताना चाहूँगा-

"सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतंत्र रहें।"

ध्यान रहे कि समलैंगिकता समाज का विषय है, इसमें स्वतंत्रता कदापि स्वीकार्य नहीं, यह हितकारी कर्म कदापि नहीं है, इस कारण भी इसमें स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती। यह समाज के लिए तीव्र गति से फैलने वाला विषय है, जिसे हर हाल में रोकना ही होगा।

मुझे आशा है कि सभी विवेकशील जन मेरे लेख पर गम्भीरता से विचार कर कुपथ को त्याग सुपथ पर चलने का व्रत लेंगे। ईश्वर सबको ऐसी सुबुद्धि व शक्ति प्रदान करे।

❑❑

पृष्ठ ६ का शेष

विचार करना चाहिए।

इस विषय में एक वेदमन्त्र द्रष्टव्य है-

ब्रहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः।

यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।। ऋक्० १०/७१/१।।

अर्थात् बृहस्पति ने मानवसृष्टि के आरम्भ में वाक् को प्रेरित किया और वेद द्वारा पदार्थमात्र के नामों को आरम्भिक ऋषियों की बुद्धियों में धारण करवाया। उन श्रेष्ठ व निष्पाप ऋषियों की गुहाओं में वह शब्दज्ञान परमात्मा की प्रेरणा से स्थापित हुआ। इस प्रकार वेद सबसे पहले शब्द प्रमाण हैं। परमात्मा का वचन होने से वे स्वतः प्रमाण हैं। अन्य सभी विद्याएं उसी धारा से प्रस्फुटित हुईं।

प्रमाणों को केवल शास्त्रों के लिए समझा जाता है। परन्तु सच्चाई यह है कि प्रमाण सत्य के निर्धारण के लिए होते हैं। और वह सत्य किसी शास्त्र में नहीं समा जाता, वह बुद्धि में प्रज्ञा रूप में निविष्ट होता है। उसी प्रज्ञा से हम ब्रह्मप्राप्ति की कामना कर सकते हैं। इसीलिए विद्या से सम्बद्ध सभी शास्त्र मोक्षपरक माने गए हैं। इसीलिए प्रमाणों को गहनता से समझना किसी भी ब्रह्मान्वेषक के लिए महत्वपूर्ण ही नहीं, अपितु आवश्यक भी है। **महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश में और ऋषियों ने प्रायः सभी दर्शनों में प्रमाणों को समझाया है। चिन्तन-मनन करके, हमें उन्हें पूर्णतया समझना चाहिए। जैसे महाभाष्य में पतञ्जलि ने कहा है, ऋषि वचन यदि समझ में न आए, तो उसमें अपनी कमी समझनी चाहिए, वचन की नहीं।** शब्द प्रमाण को बिना समझे जो इसमें संशय करते हैं, अथवा नकारते हैं, उनको इसको समझने का अधिक यत्न करना चाहिए ओर अपने शिष्यों में संशय उत्पन्न करने से बचना चाहिए।

❑❑

मूल से जुड़ो

(गंगाशरण आर्य,शाहबाद मोहम्मदपुर-न0दि0,मो0:-०९८७१६४४१९५)

वेद में सिद्धान्त है। वेद ईश्वर की थ्योरी है सृष्टि उसका प्रैक्टिकल है। इसलिए थ्योरी गलत पढ़ाई जाएगी, तो प्रैक्टिकल तो गलत होगा ही। कुरान की थ्योरी गलत है। इसलिए प्रैक्टिकल देख लो, अतः मूल से जुड़ना चाहिए, क्यों जुड़ना चाहिए? उदाहरण से समझिए-

जब तक फल मूल वृक्ष से जुड़ा रहता है, तो परिपुष्ट रहता है, सड़ता नहीं है और मूल से हटा दिया जाए, तो सड़ना शुरू हो जाता है, विकार युक्त हो जाता है, कीड़े पड़ जाते हैं और उसे सुरक्षित रखने के लिए साधनों को जुटाना पड़ता है। वह सड़ा हुआ फल कभी भी आरोग्य प्रदान नहीं कर सकता। उसी प्रकार मनुष्य जब मूल परमपिता- परमात्मा से दूर हो जाता है, तो उसके जीवन में विकार उत्पन्न होकर दुर्व्यसन रूपी कीड़े उसके शरीर को अपना घर बना लेते हैं और उसका जीवन दुर्गन्धयुक्त हो जाता है और जिस प्रकार सड़ा हुआ फल आरोग्य अर्थात् स्वास्थ्य प्रदान नहीं कर सकता, उसी प्रकार परमपिता- परमात्मा से दूर होने के बाद दुर्व्यसन व पापाचार से युक्त व्यक्ति समाज को सही दिशा प्रदान न करके घोर पतनकारी पथ का अनुगामी बना देगा इसलिए मूल से जुड़ो क्यों मूल से जुड़ने पर ही वयक्ति अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। इसी प्रकार मूल चेतन परमपिता परमात्मा के विषय में ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण उसके सही स्वरूप से अनभिज्ञ रहने के कारण व्यक्ति उसे एकदेशी मान लेता है, जिससे समाज में आपराधिक प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती हैं और व्यक्ति स्वच्छन्द होकर अधर्मयुक्त कार्यों में लिप्त हो जाता है। लेकिन यदि परमात्मा के सही स्वरूप का चिंतन हर मनुष्य कर ले कि ईश्वर सर्वव्यापक और न्यायकारी है, तो मन्दिर में स्थानबद्ध करके बिठाए गए भगवान को वहीं तक सीमित न समझकर कोई भी गलत कार्य करना तो दूर, करने का विचार भी उसके मन में नहीं आएगा क्योंकि हर पल, हर क्षण उसे इस बात का आभास रहेगा कि मैं ईश्वर के सी०सी०टी०वी० कैमरे की कड़ी निगरानी में हूँ, जो ईश्वर के सर्वव्यापक होने से सब जगह लगा हुआ है और ये न तो कभी खराब होता है और न ही बन्द होता है और न्यायकारी होने से ईश्वर की दण्ड व्यवस्था भी कड़ी है, तो गलत काम के लिए हमारे जीवन में स्थान ही नहीं होगा। हमें मूल ईश्वर से क्यों जुड़ना चाहिए? आइए! एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं:-

एक बार विद्यालय में एक अध्यापक विद्यार्थियों को गणित पढ़ा रहे थे। पढ़ाते समय उन्होंने ब्लैक बोर्ड पर **एक** लिखा और बच्चों से पूछा कि कितनी संख्या लिखी है तो बच्चों ने जवाब दिया **एक**, मास्टर जी ने एक के आगे जीरो लगा दिया और फिर पूछा तो बच्चों ने कहा कि **दस** बन गया इसी प्रकार फिर से मास्टर जी ने एक जीरो और लगाकर फिर पूछा कि कितना संख्या हो गई तो बच्चों ने कहा कि **सौ**, अब एक जीरो और लगा दी तो संख्या बन गई **हजार** इसी प्रकार मास्टर जी जीरो लगाते गए और संख्या बढ़कर **अरब**, **खरब** आदि हो गई। इतने में एक बच्चा कक्षा में से खड़ा उसने डस्टर उठाया और एक मिटा दिया अब क्या हुआ वो अरबों, खरबों की संख्या एक के मिटाते ही एक पल में जीरो बन गई। कहने का तात्पर्य है कि **एक** से जुड़े बिना संसार में हमारी कीमत भी जीरो है। जब-जब हम उस ईश्वर की कृतियों का सहारा लेते हैं, तो संसार में भौतिक उन्नति तो करते हैं लेकिन सबके मूल ईश्वर से दूर होकर अज्ञान-अविद्या में फँसकर अध्यात्मिक अवनति की ओर अग्रसर हो जीरो ही हो जाते हैं और अपनी कृतियों के गुमान में खो जाते हैं, जिससे ईश्वर की सत्ता के प्रति हमारा विश्वास भी डगमगा जाता है। इसलिए मूल से जुड़ना अत्यावश्यक है। मूल से जब तक जुड़े रहेंगे, तब तक ईश्वर के प्रति हमारा विश्वास भी अटूट रहेगा। मूल से जुड़ने का अर्थ है- ईश्वरीय सत्ता के प्रति अटूट विश्वास होना। हमारा ईश्वर के प्रति विश्वास किस प्रकार से अटूट होना चाहिए आइए! एक उदाहरण से समझने का प्रयास करें :-

एक बार एक हवाई जहाज में १० सवारी बैठी हुई थी। उन १० सवारियों में एक बच्ची ११ वर्ष की थी बाकी सभी ९ व्यक्ति बड़ी-बड़ी आयु के थे। हवाई जहाज ने जैसे ही उड़ान भरी तो करीब १० मिनट के बाद मौसम खराब होने के कारण हवाई जहाज में तकनीकी खराबी आ गई और हवाईजहाज का संतुलन डगमगाने लगा/ बिगड़ने लगा। हवाईजहाज में बैठी ११ वर्ष की बच्ची ऐसी स्थिति में भी उछल-कूद मचाकर हर्षोल्लास में मग्न थी और बच्ची के अलावा सभी सवार ९ व्यक्ति हाय मरे-हाय मरे, बचाओ हमें-बचाओ हमें, घबराने लगे, कुछ समय के बाद हवाईजहाज ठीक गति से चलने लगा। तब उन व्यक्तियों ने उस ११ वर्ष की बच्ची से पूछा कि बेटी हवाईजहाज की ऐसी स्थिति में आपको जरा भी डर नहीं लगा तनिक भी घबराहट नहीं हुई, तो उस बच्ची ने बड़ा सुन्दर जवाव दिया कि इस हवाईजहाज को चला रहे कैप्टेन मेरे पिताजी हैं, जो हवाईजहाज चलाने में बहुत ही एक्सपर्ट हैं, तो मुझे किस बात का डर? कहने का तात्पर्य है कि जीवन रूपी हवाईजहाज को चलाने वाला वह सर्वव्यापक परमपिता- परमात्मा है, तो फिर जीवन रूपी हवाई- जहाज में कैसी भी खराबी आ जाए, तो हाय तौबा मचाने की जरूरत ही नहीं है।

आइए! अब देखते हैं कि ईश्वर की कृतियों से जुड़कर किस प्रकार मनुष्य ईश्वर से दूर होता जाता है। कहने का तात्पर्य हे कि उसकी कृति का अंश लेकर जब मनुष्य अपने हाथ की कारीगरी दिखाता है, तो वह कृति ईश्वर की नहीं मनुष्य की हो जाती है और अहंकारवश मानव भूल जाता है कि **सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल ईश्वर है।** विज्ञान के यशस्वी भारतीय प्राध्यापक स्व०श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी बड़े सरल शब्दों में एक गंभीर बात कहा करते थे। मनुष्य मूर्ति- पूजा करता है। मनुष्य स्वयं अपने हाथों से मूर्ति बनाता है। कभी तो मूर्ति को ही भगवान मानकर पूजा करता है, तो कभी मूर्ति में भगवान मानकर पूजा करता है। मनुष्य कुछ भी मानकर पाषाणपूजा करे, उसे एक बात समझ लेनी चाहिए कि जिस वस्तु को भी मनुष्य का हाथ लगता है, भगवान वहाँ से भाग जाता है। सर्वव्यापक भागकर जाएगा कहाँ? यह बात आगे स्पष्ट हो जाएगी।

स्वामी जी कहा करते थे कि मनुष्य को प्रभु ने मानो यह वरदान दे रखा है कि जिस वस्तु को भी उसका हाथ लगेगा, उसमें भगवान नहीं रहेगा। पर्वत की गोदी में पड़े एक पत्थर को लीजिए। यह पत्थर किसने बनाया? उत्तर है- ईश्वर ने बनाया। इसको तोड़ें! इसके एक-एक टुकड़े को किसने बनाया? भगवान ने। अंगूर किसने बनाया? भगवान ने। अंगूर को काटें। उसमें रस है। रस किसने भरा? प्रभु ने। अब पर्वत की गोदी से एक पत्थर लें, उसे जयपुर लाएँ। मनुष्य अपनी कला दिखाता है। उसी पत्थर से मूर्ति बनाई गई। बड़ी सुन्दर मूर्ति। यह सुन्दर मूर्ति किसकी कारीगरी है, मनुष्य की। अंगूर से शराब बनी। कब? जब मनुष्य का हाथ लगा। द्राक्षासव बना। कब? जब मनुष्य का हाथ लगा। लोहा खान से निकला तो भगवान का था। मनुष्य का हाथ लगा, तो टाटा का गार्टर कहलाया। अब कोई नहीं कहता कि गार्टर ईश्वर का है। प्रत्येक वस्तु अपने मूल स्वरूप में ईश्वर की कृति है। जब मनुष्य का हाथ लगता है, तो सब यही कहते हैं कि कितनी सुन्दर है! अब ईश्वर की कृति नहीं। ईश्वर वहाँ कहाँ? यह तो ठीक है कि सर्वव्यापक कहीं नहीं जा सकता परन्तु मनुष्य की कृति आगे आ गई। प्रभु ओझल हो गया। मनुष्य द्वारा निर्मित कोई भी वस्तु ईश्वर की प्राप्ति का साधन हो ही नहीं सकती। **कितना अनर्थ है कि विश्व विधाता का पूजा के नाम पर घोर अपमान किया जाता है। ईश्वर की कृति को तुच्छ बनाकर मनुष्य अपनी कृति को श्रेष्ठ घोषित करके पूजा का आडम्बर करता है। पुष्प परमेश्वर की कृति है और मूर्ति मनुष्य की। मनुष्य अपनी बनाई प्रतिमा को पूज्य मानकर प्रभु का बनाया पुष्प उस पर चढ़ाता है। मूर्ति का यह आदर सुमन (पुष्प) का निरादर है।** इस क्रिया कलाप को आप क्या कहेंगे? यह जड़ता की प्रतीक तो है ही। इससे यह भी विदित होता है कि मनुष्य में अहंकार कितना है। अपनी कला को श्रेष्ठ और परमेश्वर की कृति को हीन समझना अहंकार नहीं तो क्या है? यह सब कुछ क्यों हो रहा है? **उत्तर है- मूल की एक भूल से।**

❑❑

पृष्ठ २ का शेष

जीवन के विषय में सोचते हैं, तो हमारे माता-पिता द्वारा किये गये अनेक उपकार सम्मुख आते हैं, जिन्हें करने में उन्होंने अनेक कठिनाईयाँ व दुःख सहे थे। आज हम चाह कर भी उनकी आत्मा को अपनी सेवा के द्वारा प्रसन्न व सुखी नहीं कर सकते। इसका कारण ये है कि बहुतों के माता-पिता अब इस संसार में ही नहीं होंगे। बहुत लोगों को माता-पिता, समाज व विद्यालयों से माता-पिता के प्रति सन्तानों के कर्तव्यों की शिक्षा ही नहीं मिलती। अतः बचपन से ही हमारे विद्वान्, पुरोहित, आचार्य व गुरु आदि सन्तानों के घर व विद्यालय आदि में उपदेश करते रहें। राम व श्रवण कुमार आदि की कथाओं के द्वारा भी सन्तानों को माता-पिता की सेवा के महत्व को बताया जाये, तो उन सन्तानों को बड़ा होने पर इस विषय में पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा।

हम जीवन में जो कुछ भी बनते हैं, वह माता-पिता सहित अपने आचार्य व गुरुओं की कृपा से बनते हैं। जीवन में शिक्षा व ज्ञान का बहुत महत्व है। हमारे सभी ऋषि वेदों के परम ज्ञानी थे। यह ज्ञान उनको गुरुकुलों में अपने आचार्य व ऋषियों से ही प्राप्त होता था। स्वाध्याय का भी जीवन में बहुत महत्व है। प्राचीन काल से ही हमारे ऋषियों ने स्वाध्याय को नित्य कर्मों में सम्मिलित किया है। वेद, दर्शन, उपनिषद्, मनुस्मृति, वेदांग आदि का स्वाध्याय मनुष्य को जीवन भर करना चाहिये। स्वाध्याय करने से मनुष्य को ईश्वर, जीव व संसार के ज्ञान सहित अपने कर्त्तव्यों, लक्ष्यों तथा उसके साधनों का भी ज्ञान होता है। जीवन के आरम्भ काल में हमें विद्यालयों में अपने आचार्यों से व्याकरण, भाषा, ज्ञान, विज्ञान तथा सामान्य विषयों का ज्ञान भी प्राप्त करना होता है। आजकल अनेक भाषाएं प्रचलित हैं। हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं का अपना महत्व है। यह भाषाएं हम सभी को सीखनी चाहिये। हम जहाँ रहते हैं, वहाँ की क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान भी हमें होना चाहिये। इसके साथ संस्कृत का ज्ञान होना भी आवश्यक है। इसके लिये सभी को विशेष प्रयत्न करने चाहिये। यदि हम सभी यह निश्चय कर लें कि हमें संस्कृत का अध्ययन करना है, तो इससे हमें बहुत लाभ हो सकता है। संस्कृत का अध्ययन कर हम अपने शास्त्रों को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। शास्त्रीय ज्ञान से हमारा धर्म व संस्कृति बलशाली होंगे। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ लिखकर एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की। उनके बनाये सत्यार्थप्रकाश गन्थ को, जो कि आर्यभाषा (हिन्दी) में है, पढ़कर हम धर्म व संस्कृति विषयक अनेक बातों को आसानी से जान व समझ सकते हैं। यह सत्यार्थप्रकाश ऋषि का समस्त मानव जाति पर एक महान उपकार है और हिन्दुओं व आर्यो पर तो यह उपकार ऐसा है कि जिसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही ऋषि दयानन्द को अपने माता-पिता व उनका घर छोड़ना पड़ा था और देश के अनेक भागों में जाकर विद्वानों व योगियों को ढूँढ कर उनसे ईश्वर व आत्मा संबंधी अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए अपूर्व पुरुषार्थ करना पड़ा था। हमें सत्यार्थप्रकाश का नित्य पाठ करना चाहिये। जीवन में जितनी बार भी सत्यार्थप्रकाश का पाठ करेंगे, उतना अधिक लाभ हमें मिलेगा।

पितृयज्ञ के अन्तर्गत हमें अपने माता-पिता की भोजन, वस्त्र, आवास आदि की उत्तम व्यवस्था कर उनकी प्रातः व सायं आवश्यकतानुसार सेवा भी करनी है। हमें उनके प्रति ऐसा सभ्य व्यवहार करना है कि जिससे उनका मन व आत्मा सदैव सन्तुष्ट रहें। जहाँ तक सम्भव हो, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिये। इस कार्य से हमें इस जन्म व परजन्म में भी सुख का लाभ होगा। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो ईश्वर की व्यवस्था से हमें माता-पिता की उपेक्षा का दण्ड मिलेगा, जिससे बचने का अन्य कोई उपाय नहीं है। अतः माता-पिता, आचार्य और गुरुओं के प्रति हमें अपने कर्तव्य को जानकर पितृयज्ञ करके पितृ ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करना चाहिये। ओ३म् शम्।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०८/२०१८
भार- ४० ग्राम

अगस्त 2018

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा
के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.............................

ग्राम.............................

डा0 ....

जिला.............................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।